ओ३म्

सुरेश चन्द्र वेदालंकार

प्रकाशन विभाग के साधारण सदस्य
१९८४

११५. सर्वश्री नारायण दास कपूर C/A शंकर मार्किट, नई दिल्ली। ११६. विनोद कुमार १/१०२, रमेश नगर, आजादपुर दिल्ली। ११७. मन्त्री आर्यसमाज, शिवाजी कालोनी रोहतक। ११८. मंत्राणी आर्य महिला समाज रेहाड़ी कालोनी जम्मू। ११९. एस. शाही, डी-८०, जयपुर। १२०. अशमा चान्दना, ४ बी/४६, सैक्टर १०, भिलाई। १२१. अमरनाथ कथूरिया, १ ए/२७, सैक्टर-१०, भिलाई। १२२. राजेश कुमार चैत राम लालवानी, २७, सिंधुनगर, जरीपटका, नागपुर। १२३. रामदेव सिंह, १-३-५५९, कबरी गुड्डा, सिकन्दरा बाद। १२४. राम मिलन यादव, हिंदी विद्यालय, सिकन्दराबाद। १२५. कौशल्या देवी दिवान, ए-१४३, हैदर बस्ती, सिकंदराबाद। १२६. एस. के. शारदा मैसर्स रायचूर सालवैंट लिमिटेड रायचूर। १२६. बाबा राम शर्मा, शाली वेगा हैदराबाद। १२७. श्री कान्तीह १६४/i सत्तपैर मैसूर। १२८. कु. उपा अब्राजी आयगोके महमूलू नगर ब्लाक नं० १३ वीं शोलापुर। १२९, श्रीमती पटवर्धन ए. ए. २७७ उत्तर कसबा शोलापुर। १३०. भरत सिंह शास्त्री, डी. ए. वी. कालेज, शोलापुर। १३१. सुखदेव पाटिल दयानन्द कालेज शोलापुर। १३२. राजगोपाल सिनियार, दयानन्द कालेज शोलापुर। १३३ मुख्य अध्यापिका काशीनाथ ओसावा हाई स्कूल, शोलापुर। १३४ प्रवीनचन्द मोहन लाल मिठाई बाबा चौकबाजार सूरत। १३५ स्वरूप सिंह राजपूत भारत टाइपिंग सेन्टर सालीफालिया सूरत। १३६ विजय शर्मा E १६ जंगपुरा एक्टेंसन दिल्ली। १३७ रमेश सरदेसाई बी ३०२ प्रगति विहार नई दिल्ली। १३८ एस. डी. झा ५५१ आर माडल टाउन जालंधर। १३९ म. ध

ओ३म्

श्रद्धा पुष्पमाला का ९६वां पुष्प

सफल जीवन

लेखक

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए० एलटी०
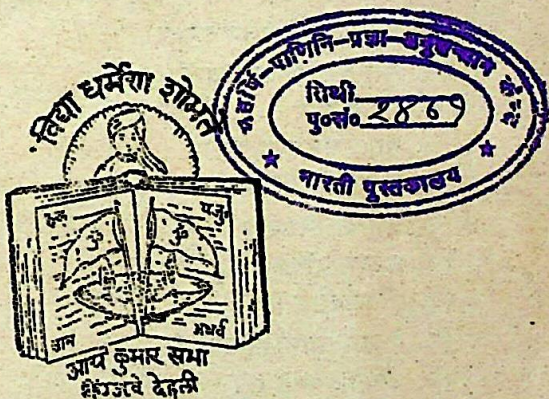
प्रकाशक

आर्य कुमार सभा (रजि०)
किंग्ज़वे दिल्ली-११०००९

प्रथम वार : २२००   दूरभाष : ७११३७१७   मूल्य २.००

लेखराम बलिदान दिवस १९८५

विषय सूची

ओ३म्

भूमिका

'वेदों पर आर्य जाति एवं हिन्दू जाति की अनन्त काल से अविचल श्रद्धा है। वेद की स्पष्ट आज्ञा का पालन हिन्दू एवं वैदिक लोगों के लिए अकाट्य है। वेद ईश्वर की विमल वाणी है और परमात्मा द्वारा प्रदत्त दिव्य ज्ञान है। "आर्य सभ्यता और संस्कृति का वेद मूलाधार है। वेद आर्य ज्ञान-विज्ञान का उज्ज्वल धाम है। वेद सम्पूर्ण आर्य वाङ्मय का प्राण है। वेद में भक्तिरस की मन्दाकिनी एवं उच्च गंभीर विचारों का सुखद आवास है। वेद ब्रह्मणवी का ज्ञान और रणांगण का विहान है। वेद में दिग्-दिगन्त को पावन करने वाले उदात्त उपदेश हैं। वेद में मानवता विद्रोहियों में हड़कम्प मचाने वाले अनुपम आदेश हैं। वेद मानव के समस्त उच्च गुणों की क्रीडास्थली है। वेद में आधिभौतिक उन्नति की चरण सीमा है, आधिदैविक अभ्युदय की पराकाष्ठा है और आध्यात्मिक उन्नयन का चूडान्त रूप है।" वेद की स्पष्ट आज्ञाएं हिन्दुओं के लिए अकाट्य हैं परन्तु करोड़ों हिंदुओं ने वेदों का नाम तक नहीं सुना है। बड़े-बड़े पंडितों ने वेदों को देखा तक नहीं है। इन पण्डितों तथा विद्वानों को वेदों की अपेक्षा श्री मद्भगवद्गीता या श्री मद्भागवत् पर अधिक श्रद्धा है। भगवद् गीता बड़ी उत्तम पुस्तक हो सकती है पर वह यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के प्रथम दो मन्त्रों की व्याख्या मात्र है। वेद के मन्त्रों द्वारा धर्म एवं जीवन

की वास्तविकता सर्वसाधारण को बतलाने के लिए आर्य कुमार सभा (रजि०) किंग्जवे दिल्ली ने जो पुस्तक प्रकाशन द्वारा अपना अभियान चलाया है, वह प्रशंसनीय है—अभिनन्दनीय है। वे सरल और सस्ते रूप में वेद का प्रचार और प्रसार कर रहे हैं। उन्हीं के आदेश से मैंने उन्हें 'सफल जीवन' की प्रेरणा देने वाले मंत्रों की व्याख्या लिखी है। मैं 'श्री रामेश्वर प्रसाद भाटिया' का स्वागत करता हूं और आयु में वृद्ध होने से अशीर्वाद देता हूं। साथ हीं उनसे निवेदन करूंगा कि महर्षि दयानन्द के संदेश और स्वामी श्रद्धानन्द के वलिदान, पं० लेखराम के शुद्धि कार्य, गुरुदत्त की विद्वत्ता, नारायण स्वामी की योग्यता का पता देने को वे अपने साहित्य को सस्ते से सस्ता वनायें। वे चाह भी रहे हैं। ईश्वर उनको सफलता दे। वेद के मन्त्र नवयुवकों, आर्य वीरों एवं आर्य कुमारों के साथ प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति की ओर ले जायें—यही शुभकामना है।

धन्यवाद

—सुरेशचन्द्र वेदालंकार

प्रकाशकीय

परमपिता परमात्मा की अनुकम्पा और महती कृपा से श्रद्धा पुष्प माला का ९६वां पुष्प पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष हो रहा है। इस समय तक ३,०१,७०० प्रतियां प्रकाशित हो चुकी हैं।

हम पं० सुरेशचन्द्र वेदालंकार के प्रति आभारी हैं कि जिन्होंने इतनी उत्साहवर्धक, पुस्तक रोचक ढंग से लिखी। श्री बनारसी दास वर्मा का हार्दिक धन्यवाद है। आपने पुस्तक का मुख्य पृष्ठ बनाकर इस पुष्प को सुन्दरता प्रदान की।

सभा का प्रकाशन विभाग वैदिक प्रचारार्थ है। इसके दो प्रकार के सदस्य हैं।

१. **आजीवन सदस्य**—जो न्यून से न्यून १०० रुपया देते हैं। इस समय हमारे ४५४ आजीवन सदस्य हैं।

२. **साधारण सदस्य**—जो न्यून से न्यून १० रुपया वार्षिक देते हैं। १९८४ में हमारे २६९ साधारण सदस्य थे।

आर्यकुमार सभा के प्रकाशन-विभाग का आय-व्यय। जून १९८३ से लेकर ३१ मई १९८४ तक इस प्रकार है—

आय		व्यय	
गत बचत	७७,८२२-९३	किराया वाहन	१६२-१५
सदस्यता शुल्क	७,६४८-००	जलपान	१५२-७५
पुस्तक विक्रय	३,८०४-४८	मुरम्मत	९४-७०
विज्ञापन	५००-००	पेकिंग	१५८-८०
ब्याज	५,०२९-९५	ब्लाक	४६-०१

दान	१,१०१-००	डाक-व्यय	४९३-८५
		पु० छपाई	७,६५१-४०
		स्टेशनरी	५३-१०
		स्थिर निधि	८०,०००-००
		बैंक में	७,०००-००
		नकद	९३-६०
योग	९५,९०६-३६		९५९०६-३६

इस संस्करण के लिए सभा के आजीवन सदस्य श्री वेद प्रकाश सलूजा मुरादाबाद ने अपनी धर्म पत्नी स्वर्गीय श्रीमती राजरानी सलूजा की पुण्य समृति में १,००० रुपए दान दिए।

हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे हमारे प्रकाशन विभागन के सदस्य बनें व अधिक-से-अधिक साहित्य मंगाकर वैदिक प्रचार में योगदान दें।

अतुल कुमार वधवा
(प्रकाशन मंत्री)

दूरभाष : ७११३७१७

समर्पण

राष्ट्रनिर्माता—समाज सुधारक वैदिक धर्म के नैष्ठिक युवकों युवतियों और आर्य कुमार सभाकिंग्जवे के आर्य कुमारों को सस्नेह समर्पित ।

—सुरेशचन्द्र वेदालंकार

आर्य कुमार सभा किंग्जवे द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

पुस्तक का नाम	लेखक	मूल्य
सत्संग सुधा	संकलित	०-५०
नभ के तारे	डा० रमेश कुमार लौ	१-५०
विज्ञान और धर्म	प्रो० प्रतापसिंह	१-५०
स्वर्ण सिद्धान्त	स्वामी जगदीश्वरानन्द	१-००
मंगल प्रभात	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	१-५०
वैज्ञानिक वैदिक चिंतन	प्रो० प्रतापसिंह	
,, (प्रथम भाग)	,, ,,	१-७५
,, (दूसरा भाग)	,, ,,	२-००
मनुर्भव	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	-५०
सफल जीवन	,, ,,	२-००

आर्य कुमार सभा किंग्ज़वे दिल्ली

मुद्रक : भाटिया प्रेस, रघुवरपुरा नं० २, गांधीनगर, दिल्ली-३१

सफलता चाहिए ?

जीवन प्रभु के अर्पण कर दो

अपना जीवन प्रभु के अर्पण कर दो। जो कुछ काम करो, प्रभु का समझ कर करो। यदि ईश्वर की प्रार्थना में थोड़ा भी समय लगाना लाभकर है तो विचार करो कि सारा समय प्रभु के लिए लगाना कितना लाभकर होगा।

जीवन का इससे अच्छा और क्या उपयोग हो सकता है कि उसका प्रत्येक क्षण प्रभु की सेवा में लगे। प्रत्येक कार्य, विचार और हमारा प्रत्येक शब्द उसकी सेवा के लिए हो। हम प्रभु के जितना निकट रहते हैं उतनी ही हमारी शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। यदि हम उससे अपनी एकता अनुभव कर लें तो हमारे जीवन में एक नया उत्साह, उल्लास और शक्ति आ जाएगी। याद रखिए सम्पूर्ण विश्व में एक ही तत्व काम कर रहा है, एक ही जीवनी शक्ति एक ही सत्य वर्तमान है। हम सब उस दैवीय प्रवाह की ओर जा रहे हैं, जो ईश्वर तक जाता है। इस तरह का मनोभाव रखने से एक आलौकिक प्रोत्साहन प्राप्त होता है, हमारे मन का भय नष्ट हो जाता है। यह भावना रखते हुए आइए, हम दोनों समय भगवान् के गुण गाएं। अथर्ववेद ६/११ एक छोटा सा सूक्त है। उसमें परमात्मा की स्तुति के लाभों का वर्णन है। पहला मन्त्र है:—

दोषो गाय बृहद् गाय द्यु मद्ध हि। आथर्वण स्तुहि देव सवितारम्। १।

अर्थात् (आथर्वण) हे अथर्वा अर्थात् स्थितप्रज्ञ प्रभु से अपना सम्बन्ध रखने वाले उपासक। (दोषा) रात्रि के समय (उ) और दिन के समय (गाय) तू भगवान् के गुण गा (बृहत्) खूब दिल भर के (गाय) गा

(सवितारं) सबके उत्पादक और प्रेरक (देव) भगवान् की (स्तुहि) स्तुति कर और इस प्रकार (द्यु मत्) प्रकाशमान् आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्य को (धेहि) धारण कर। गरीबदास कहते हैं:—

साहिब जिनके उर बसै, झूठ कपट नहिं अंग।
तिनका दरसन न्हान है, कह परवी फिर गंग॥

जिनके हृदय-गृह में ईश्वर बसता है, असत्य और कपट का जहां अंश भी नहीं है, उनका दर्शन ही तीर्थ स्थान है—कहां का तुम्हारा पर्व और कहां का गंगा स्नान ?

इस प्रार्थना से हम ईश्वर के साथ एकता स्थापित करते हैं और हमें अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान हो जाती है। इससे हमें यह विश्वास हो जाता है कि वह ईश्वर के कितना निकट है, उस ईश्वर से कितनी एकता स्थापित कर ली है, इसका लाभ यह होता है कि हममें ऐसी दिव्यता आ जाती है कि हमारी योग्यताएं, हमारी शक्ति, हमारा आत्मविश्वास और सहिष्णुता बढ़ती जाती है और इस तरह हमारा जीवन महान् से महान् होता जाता है। इस सूक्त का दूसरा मन्त्र कहता है—

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः। सत्यस्य युवानयद्रोघवाचं सुशेवम्॥ २॥

(उ) निश्चय से (तं) उसकी (स्तुहि) स्तुति कर जो कि हृदय समुद्र या संसार समुद्र के (अन्तः) अन्दर रमा हुआ है। तू (सत्यस्य) सत्य का (सूनुः) पुत्र है अर्थात् परम सत्यमय है (युवानं) संसार के सब पदार्थों का संयोग और वियोग करने वाला है (अद्रोध वाचं) द्रोह को हटा देने वाली वाणी को देने वाला है। (सुशेवं) सुख मंगल देने वाला है।

इस मन्त्र में पहले कहा गया है कि परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है और प्रत्येक प्राणी के हृदय में भी विद्यमान है। वह सत्यमय है। उसकी स्तुति से मनुष्य के हृदय का असत्य निकल जाता है, असत्य ही वाणी का द्रोह है। यह द्रोह नष्ट हो जाता है और उस समय मनुष्य मंगल को प्राप्त होता है।

सन्त तुकाराम कहते हैं—

जिकिर करो अल्ला का बावा, सबत्यां अन्दर भेस।

बाबा, तुम तो सदा उस अल्लाह के ही गुण गाओ, जो सबके अन्दर में रम रहा है।

गरीबदास उसकी व्यापकता का वर्णन करते हुए कहते हैं—

दिल के अन्दर देहरा, जा देवल में देव।
हरदम साखी भूत है, करौ तासु की सेव।।

उस देवता का मन्दिर तेरे दिल के अन्दर ही है उसकी तू सेवा और उसी की पूजा कर। क्या तेरा प्रत्येक श्वास इसकी थाती नहीं है।

जब प्रभु की इस सर्वव्यापकता का बोध हो जाता है तो सबसे हमारा वैर नष्ट हो जाता है और वाणी में माधुर्य तथा सत्य आ जाता है और हमारा कल्याण होने लगता है। हरिदास कहते हैं—

अब हौं कासौं वैर करौं ? कहत पुकारि प्रभु निज मुख से—
घट-घट हौं विहरौं।

बतलाओ, अब मैं किससे वैर करूं ? जब कि मेरे प्रभु खुद पुकार-पुकार कहते हैं कि—घट-घट में मैं ही विहार कर रहा हूं।

दादूदयाल ने कहा है :—

'दादू' देखौं दयाल को, बाहरि भीतरि सोइ।
सब दिसि देखौं पीय को, दूसर नाहीं कोइ।।

बाहर-भीतर सब जगह—उसी दयालु मालिक को मौजूद पाता हूं। हर दिशा में वही प्रियतम प्यारा नजर आता है। दूसरा तो कहीं कोई है ही नहीं।

ऐसी स्थिति में मनुष्य का मंगल ही मंगल होगा। यही मन्त्र का भाव है।

उस ईश्वरीय स्रोत से अलग होने का विचार हमें निर्माण की सारी शक्तियों से वचित कर देता है क्योंकि अपने मूल स्रोत से अलग होकर कोई भी कितना प्राप्त कर सकता है ? वास्तव में हमारी सारी कमजोरियों,

बीमारियों, दुःखों, कष्टों का एक मात्र कारण यह है कि हम अपने को उस शक्तिशाली निर्माता से अलग समझते हैं। अतः तीसरे मन्त्र में कहा गया है—

स घा नो देवः सविता सविषद मृतानि भूरि। उभे सुष्टुती सुगातवे।

अर्थात् (घा) निश्चय ही (सः) वह (सविता) सबका उत्पादक (देव) देव (नः) हमारे लिए (भूरि) बहुत (अमृतानि) अमृत (साविषत्) देवे, हम (सुगातवे) उसके गुणों का सुन्दर गान करने के लिए (उभे) दोनों काल की (सुष्टुती) उत्तम स्तुतियां करते हैं।

बलवान् बनो-बलवान् बनो

आवृषायस्व। अथर्व ६।१०।१

अथर्व वेद के इस छोटे से वाक्य में जीवन को आनन्दमय सशक्त एवं शक्तिशाली बनाने के लिए मंत्र का उद्बोधन है 'बलवान् बनो।' यदि हम बलवान् और सशक्त होंगे तो हमारा राष्ट्र स्वस्थ एवं सशक्त होगा। संस्कृत साहित्य में एक वाक्य आया है, 'वीर भोग्या वसुन्धरा' इस पृथ्वी के भोग वीरों के लिए है। निर्बल और कमजोर इस संसार का आनन्द नहीं उठा सकते।

महर्षि दयानन्द में शारीरिक, आत्मिक और मानसिक सभी बल थे। उनकी आत्मा पवित्र और सुन्दर थी। उनका मन उन्नत और उच्च था और उनका शरीर पुष्ट और स्वस्थ था। एक दिन कासगंज में महाराज शौचादि से निवृत होने के लिए जंगल की ओर जा रहे थे। रास्ते में मनुष्यों की भीड़ लगी हुई थी। दो सांड दो घण्टे से पैंतरे बदल कर लड़ रहे थे। मार्ग रुक गया था। महर्षि ने देखा। वे आगे बढ़े। लोगों ने रोका पर वे रुके नहीं आगे बढ़े और सांडो को सींग पकड़ कर अलग कर दिया। सभी लोग देखते रह गये। चैन-सुख ने स्वामी जी से कहा "महाराज! यह आपने क्यों किया? यदि सांड सींग मारता तो आप क्या करते?" "मैं इन्हें हाथों से परे धकेल देता।" स्वामी जी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

ऋषि दयानन्द जी का व्याख्यान हो रहा था। उनकी तेजस्वी मुख-मुद्रा और दिव्यवाणी से प्रभावित श्रोता वर्ग मंत्र मुग्ध हो बैठे थे। स्त्रियों की कतार एक ओर थी, पुरुषों की दूसरी ओर। स्वामी जी जीवन में भक्ति का महत्त्व समझा रहे थे। उन्होंने कहा 'वह भक्ति जिसमें शक्ति नहीं, वास्तविक भक्ति नहीं। प्रत्येक प्रकार की भक्ति के मूल में शक्ति का योग होना चाहिए। चाहे वह भक्ति ईश्वर भक्ति हो या देश भक्ति—भक्ति मात्र में बल ही मेरुदंड है। बलवान् जातियों की भक्ति निभती है। निर्बलों की नहीं। क्योंकि भक्ति को कदम-कदम पर अपनी परीक्षा देनी पड़ती है। यह परिक्षा कभी मनोबल की होती हैं तो कभी शरीर बल की।

इसी बीच वहां दो साँड लड़ते हुए आए। वे सीधे औरतों की कतार में घुसे। श्रोताओं में भदगड़ मच गयी सबको अपनी चिंता थी। स्त्रियों की ओर किसी का ध्यान न गया। स्वामी जी मंच से कूदे और दोनों सांडों के सींग पकड़ कर उन्हें ऐसे अलग कर दिया जैसे कोई सयाना दो बच्चों को जुदा करता हो। दोनों सांडों ने अपने लाल-लाल नेत्रों से क्षण भर स्वामी जी को घूरा, फिर दोनों नीचे गरदन किए विभिन्न दिशाओं को चले गए।

महर्षि अरविंद ने बड़ौदा कालेज में छात्रों को उपदेश देते हुए कहा "सब सत्यों का निचोड़ तुम्हारे सामने सिर्फ एक ही सत्य है कि निर्बलता से बड़ा पाप जीवन में कुछ नहीं है। तुम्हारे सारे मुक्ति अभियान इसी के लिए हों, यही कामना है। जहां तुम इस कुंभकर्ण से मुक्त हो गए। इसे तुमने जीत लिया, वहां तुम संसार के बड़े-से-बड़े संकटों को पार कर जाओगे।"

लाला लाजपतराय ने भारत के नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि "मैं अपने देश वासियों से बार-बार कहना चाहता हूं कि किसी जाति या राष्ट्र का निर्माण सपनों से नहीं होता, कोरे शब्दों से नहीं होता बल्कि लोह और लोहू से होता है। हमारे शरीर में तेज बहने वाली लोहू की धारा हो और उस लोहू की धारा में बलि की लालसा हो। वैसे ही हमारे बदन लोहे के हों और उसी तरह लोहे की हो हमारी इच्छा शक्ति।

इस योग्यता के साथ अगर लोह दंड भी हमारे हाथ में हो एक राष्ट्र क्या सारी पृथ्वी को हम भय-मुक्त कर सकते हैं।"

छत्रपति शिवाजी ने अपने पराक्रम और शौर्य से राज्य का निर्माण कर लिया तो वे अपने गुरु संत रामदास के पास गए और सभी राज्य उनके चरणों पर न्यौछावर कर दिया। शिवाजी को एक टक स्वामी रामदास ने देखा और कहा "मुझे राज्य नहीं चाहिए—तुम्हारे जैसे एक सौ शिवा मुझे चाहिए। निर्माण के बाद अब राज्य की रक्षा की बारी है क्या इसकी रक्षा मैं करूं? स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा रहता है स्वस्थ आत्मा ही राज्य की रक्षा का पहला पाया है। प्रजा के मजबूत शरीर राज्य की अभेद दीवारें होती हैं। शिवा जाओ अपनी प्रजा को देह धर्म सिखाओ—देह के प्रति हमारी उपेक्षा बहुत अधिक हो चुकी है, यही हमारे पतन का मूल कारण है।"

एक दिन स्वामी विवेकानन्द से कुछ नवयुवकों ने दिव्य जीवन का सही मार्ग पूछा। स्वामी विवेकानन्द ने कहा, 'तुम्हारा धर्म है बलवान् बनना। यह मिलेगा अखाड़ों में, खेल के मैदानों में, पहाड़ों और नदियों की खतरनाक छातियों में। आज हमें अर्जुन चाहिए जो शक्ति की उपासना करे, जो दुर्जनों और दुष्टों से इस भूमि को मुक्त करे। नवयुवकों का स्वधर्म सदैव बल की पूजा करना है। बलवान् बनो यही मेरा गुरु मंत्र रहा है।

१९०५ में जापान ने रूस को पराजय दी वह एशिया की यूरोप पर विजय थी। लोकमान्य तिलक ने उस समय जो शब्द कहे थे वे प्रत्येक नवयुवक के लिए ध्यान देने योग्य हैं। उन्होंने कहा 'छोटे से जापान ने विशाल रूस को पछाड़ दिया—जानते हो, इसा रहस्य क्या है? जापान के नवयुवकों ने बल की उपासना की है। बल ही सारी सिद्धियों की कुंजी है। बलहीन कहीं कुछ भी नहीं कर सकता है। जिस शरीर की नसों में गरम खून दौड़ता है, वह शरीर कभी गुलाम नहीं बनाया जा सकता। शरीर सबसे प्रथम धर्म है। बड़का पेड़ ही आंधियां सह सकता है। बल का उपासक सिंह ही निर्भय विचर सकता है। जाओ, इन मुलायम हड्डियों में

फौलाद भरो, इन रूखे चेहरों पर सुर्खी सींचो। आज यदि कुछ भी ऐसे नवजवान मुझे मिल जाएं तो स्वराज मेरी मुट्ठी में है।'

वर्तमान तुर्की के निर्माता कमाल पासा ने देश का शासन अपने हाथ में लेते ही अपने देश के शिक्षा विभाग को आदेश दिया 'एक साल के भीतर मुझे दस हजार ऐसे नवजवान चाहिए जो बन्दूक चला सकें, घोड़े पर चढ़ सकें और नदियों में तैर सकें।' शिक्षा विभाग ने इस आदेश का पालन किया! उसने जो नवयुवक दिए उनके शरीर स्वस्थ, पुष्ट और दर्शनीय थे, मन उत्साह से भरे थे और चेहरे पर उनकी आत्मा की शक्ति की छाया थी। परिणाम यह हुआ कि उन्हें देखकर वहां के हर नवयुवक की यही आकांक्षा रहने लगी कि उसकी गिनती भी अगले दस हजार की श्रेणी में हो। बस, तुर्की के भाग्य जग गये।

स्वामी श्रद्धानन्द बल और तेज के पुंज थे। दिल्ली में रौलट एक्ट के विरोध में विशाल प्रदर्शन हो रहा था। दिल्ली का भार स्वामी श्रद्धानन्द के हाथ में था। जलूस चाँदनी चौक पहुंचा। श्रद्धानन्द पीछे जलूस की व्यवस्था में लगे थे। जलूस के सामने जिसके राज्य में सूर्य नहीं छिपता। उन अंग्रेजों की सेना आकर डट गई और उसके कमांडर ने जलूस को तितर बितर हो जाने का आदेश दिया। स्वामी जी को सूचना मिली। वे पीछे से जलूस के सामने पहुंचने के लिए भागे आये। सचमुच वीर मुसीबत के समय दूसरों को पीछे हटाते हैं और स्वयं आगे बढ़ते हैं। कायर दूसरों को आगे बढ़ाता है और स्वयं पीछे छिपता है। स्वामी श्रद्धानन्द वीर थे। वे आगे आए और जलूस के सामने आकर ललकारते हुए अंग्रेज कमांडर को कहा तुम जलूस पर गोली बाद में चलाना—यदि हिम्मत हो तो इसका पहला वार मेरे ऊपर करो। उनकी इस वीरतामयी ललकार को सुनकर थोड़ी देर के लिए हवा रुक गयी, आकाश स्थिर हो गया, पृथ्वी ने घूमना बन्द कर दिया, सूर्य और चन्द्रमा खड़े होकर वीर की इस अद्भुत शक्ति को देखने लगे। स्वामी श्रद्धानन्द ने जब अपनी छाती खोलकर गोली मारने को कहा तो 'अंग्रेजों की संगीने झुक गई और जलूस शान से 'स्वामी श्रद्धानन्द' की जय जयकार करता हुआ आगे बढ़ा। स्वामी श्रद्धानन्द की इस

वीरता और अदम्य साहस का कारण उनका चरित्र था। उनका कहना था 'राष्ट्र का मेरुदंड है उसका चरित्र। चरित्र के केन्द्रबिन्दु के चारों ओर ही राष्ट्र का विस्तार और उसकी स्वतन्त्रता रहती है। यह बिंदु जहां ओझल हुआ वहां राष्ट्र एवं समाज की तमाम कड़ियां भी बिखर जाती हैं। इतिहास साक्षी दे रहे हैं कि चरित्र के अभाव में विशाल से विशाल राष्ट्र भी नामशेष हो गए। चरित्र सम्पन्न अति छोटा राष्ट्र भी चरित्र विहीन असीम राष्ट्र से अधिक बलवान् और स्वतन्त्र है। चरित्र के खूंटे से ही बंधा होता है राष्ट्र की स्वतन्त्रता स्वातन्त्र्य मदोन्मत्त हाथी। कच्चे और खोखले खूंटे से उसे बांधा नहीं जा सकता है। कौटिल्य कहते हैं 'उनति प्रवृद्धा शालाली वारणस्तम्भो नभवति' शालाली का पेड़ चाहे जितना घना और लम्बा चौड़ा हो उसे हाथी का खूंटा नहीं बनाया जा सकता।'

इस प्रकार दुनिया में वही व्यक्ति, वही समाज और वही राष्ट्र जीवित रहता है जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की उपासना करता है। परन्तु, बल का मतलब यह नहीं है कि शरीर के पोषण में ही लगे रहो। स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने लिखा है "शारीरिक बल के लिए व्यायाम करो, बौद्धिक बल के लिए 'ओ३म्' का ध्यान करो और मन को पवित्र बनाने के लिए स्वाध्याय और विद्वानों का सत्संग करो।"

याद रखो 'राज्य की नींव में बज्र की शक्ति होनी चाहिए—फौलाद के शरीर जब ईंटें बनते हैं तभी राज्यों का निर्माण होता हैं।' इसलिए वेद का आदेश है 'आवृषायस्व' बलवान् बनो—बलवान् बनो।

मृत्यु एक मधुर कविता है

विधुं दद्राणं समने बहूनां, युवानं सन्तं पलितो जभार।
देवस्य पश्य काव्यम् महित्वा, अद्या ममार स ह्यः समानः॥

ऋ.—१०-५५-५

(समने) बाह्य तथा आन्तरिक संग्राम में (बहूनां दद्राणं) बहुतों को भगाने वाले (विधुम्) विविध कर्म कुशलतापूर्वक करने वाले (युवानम्) शुभ कर्मों से मेल करने वाले तथा अशुभ कर्मों का त्याग करने वाले को

भी (पलितः जभार) सबका पालन करने वाला वृद्धकाल अपने गाल में रख लेता है। (देवस्य) दिव्य चमत्कारी प्रभु के (काव्यम्) इस काव्य को (पश्य) देख, समझ और सीख कर अपने जीवन व्यवहार को बदल। जो व्यक्ति (महित्वा ह्यः समानः) कल महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण बड़ी अकड़ से जी रहा था, सम्मान प्राप्त कर रहा था (सः) वह (अद्या) आज (ममार) मरा पड़ा है।

मृत्यु के विषय में अनेक विद्वानों ने अनेक बातें कही हैं। परन्तु मृत्यु जैसी सार्वभौमिक वस्तु को विश्वात्मा ने सभी मनुष्यों के लिए बनाया है —यह निश्चित है। क्या यह मृत्यु मनुष्य के लिए अभिशाप है ? विचार कीजिए तो लगेगा कि यह प्राणी-मात्र के लिए वरदान है, अभिशाप नहीं।

मृत्यु में एक आनन्द है, परन्तु मनुष्य को इस आनन्द से इसलिए अन्भिज्ञ रखा गया है, ताकि वह जीवन की कठिनाइयों को सह सके।

वैदिक संस्कृति में मृत्यु की भीषणता नहीं है। मृत्यु तो मानो जीवन वृक्ष में लगा हुआ सुन्दर फल है। जीवन और मृत्यु दोनों ही अत्यन्त मंगल कारक और प्रेरणादायक भाव हैं। रात्रि से ही तो अरुणोदय होता है और अरुणोदय में ही रात्रि छिपी होती है। जीवन मृत्यु रूपी रात्रि का अरुणोदय है।

प्रश्न कभी-कभी मन में उठता है, यह मृत्यु क्या है ? हम मृत्यु को जानते नहीं हैं; क्योंकि हम मरे नहीं हैं ! जो मर चुका है। वह मृत्यु का स्वरूप बतलाने आएगा नहीं। हां, यह मृत्यु प्रत्येक के पास आएगी। आज जिस-का जन्म हुआ है, कल वह अवश्य मरेगा। परन्तु कोई नहीं बताता कि मृत्यु क्या है ?

वैदिक विचारधारा के अनुसार मृत्यु का अस्तित्व है ही नहीं। मृत्यु के वास्तविक स्वरूप को समझ लेने से यह मिट जाती है। वास्तविक स्व-रूप को समझने के लिए हमें यह ध्यान रखना है, कि 'आत्मा' और 'शरीर' दो वस्तुएं हैं। इनमें से शरीर की मृत्यु होती है—आत्मा की नहीं। वास्तव में मृत्यु एक निद्रा है हम प्रति दिन सोते हैं, रोज-रोज सोना छोटी-

छोटी मृत्यु हैं। डा० सत्यव्रत जी सिद्धातालंकार लिखते हैं "शरीर जब थक जाता है, तब आत्मा हमें सुला देती है ताकि इसमें शक्ति का संचार हो जाय। वैटरी-चार्ज हो जाय। बैटरी जब बिल्कुल काम लायक नहीं रहती तब आत्मा इसे छोड़ देती है और वह कारखाने के लिए दूसरी वैटरी ले लेता है।"

कठोपनिषद् में नचिकेता ने यमराज से पूछा, 'गुरुदेव ! जब आदमी मर जाता है तब कई कहते हैं, यह मर गया और कई कहते हैं, यह नहीं मरा। तुम तो साक्षात् मृत्यु रूप हो अतः तुम बतलाओ कि तुम हो क्या ?

यमराज बोला संसार में दो तरह के मनुष्य हैं। एक वे जो शरीर को आत्मा मानते हैं और दूसरे वे जो शरीर को आत्मा नहीं मानते। शरीर को आत्मा मानने वाले सांसारिक भोग-विलासों में लिप्त रहते हैं। वे 'प्रेय' मार्ग के पथिक बन जाते हैं। परन्तु शरीर को आत्मा न मानने वाले, वे नित्य की तलाश करते हैं, दुनिया की टीप-टाप से उनकी तृप्ति नहीं, होती, भौतिक भोग-विलासों से उनका जी नहीं भरता। इनका मार्ग 'श्रेय' का होता है। याद रखो, मृत्यु का अर्थ है निर्वाण अर्थात् अनन्त जीवन प्राप्त कर लेना। अपने वैयक्तिक क्षुद्र स्वार्थ, अपनी आसक्ति को भूलना ही सच्ची मृत्यु है। इसलिए सन्त तुकाराम कहा करते थे—

अपनी आंखों ही मैंने तो अपनी मृत्यु देख ली है।

अनुपम था मेरा सुख सुहाग।

जो एक बार इस मृत्यु का अनुभव कर लेते हैं उनकी मृत्यु नहीं होती मृत्यु मानो मां का मंगलमय हाथ, जो प्रेय मार्ग में सने जीवन को धोकर स्वच्छ कर दे—

धूलि धूसरित है यह तन मन निज अमृत कर से धो दे भगवन्।
सुला मुझे चरणों में निशदिन भगवन् किसे कहूं ? अब क्या कहूं ?

मनुष्य से आसक्तिमय पसारा छूटता नहीं। लेकिन ईश्वर मृत्यु के द्वारा उसे उठा देता है। सचमुच मेरा यह मालिन्य, मां ! तेरे बिना कौन धो सकता है ?

अतः वैदिक विचारधारा कहती है 'प्राणो वै मृत्युः' मृत्यु प्राण है। मृत्यु का दंश काटकर वैदिक विचारधारा ने उसे सुन्दर और मधुर बना दिया है। मृत्यु मानो खेल है। मृत्यु मानो आनन्द है। मृत्यु मानो काव्य है। मृत्यु मानो पुराने वस्त्र बदलना है। जिन्होंने मृत्यु के इस काव्य को समझा है। उन्हें मृत्यु से भय नहीं लगता। उन्हें मृत्यु में भी काव्य का सा रस मिलता है।

भगतसिंह (१९०७-१९३१) को जब फांसी पर चढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा था तो उसका चेहरा उज्ज्वल हो उठा, उसका वजन बढ़ गया और 'भारत माता की जय, 'इन्कलाब जिन्दा बाद' का नारा लगाता हुआ फांसी पर चढ़ गया।

रोशनलाल को इलाहाबाद जेल में फांसी होने वाली थी। पहले दिन अंग्रेज सुपरिण्टैण्डैंट ने कसरत करते देख उससे पूछा कि कल तो तुम्हें फांसी होगी, आज क्यों कसरत कर रहे हो? वह बोला : वैदिक धर्म में मरते समय जो भाव होता है उन्हीं के अनुसार दूसरा जन्म होता है। मैं शक्ति प्राप्त करने का विचार लेकर मरूंगा तो अगले जन्म में ब्रिटिश राज्य को उखाड़ फेंकने में अधिक शक्ति ग्रहण करूंगा।

रामप्रसाद बिस्मिल को जब गोरखपुर में फांसी दी गई तो 'विश्वानि देव' मंत्रों का पाठ करते हुए उसने फांसी की रस्सी को हर्ष से चूम लिया।

१५९७ ई० में जब अकबर की सेना से युद्ध के समय जयमल और फत्ता ने और उनके वीर सैनिकों ने केसरिया बाना पहनकर अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के लिए बलिदान दिया और स्त्रियों ने जौहर व्रत धारण किया। तब क्या वह अभिशाप था?

ऋषि दयानन्द (१८२४-१८८३) को विष दिया गया था। विष से रोम-रोम में आग लगी थी परन्तु मृत्यु के समय चेहरे की कान्ति को देख कर नास्तिक गुरुदत्त (१८६४-१८९०) आस्तिक बन गया।

चांदनी चौक में अंग्रेजों की सेना के सामने जब एक निहत्था संन्यासी अपनी छाती खोल कर गोलियों का मुकाबला करने खड़ा हो गया तो बन्दूकें झुक गईं। क्या यह मृत्यु का आनन्द नहीं?

इंग्लैंड में लैटीमर (१४८५-१५५५) में एक पादरी था। उसके हाथों में रुई लपेटकर, उसकी मशाल बनाकर उसे आग लगा दी गई। वह यह कहता हुआ मरा कि उसकी मृत्यु की मशाल सभी दुनिया में अज्ञान के अन्धकार को दूर करेगी।

ब्रूनो (१५४८-१६००) कहता था कि सूर्य पृथ्वी के गिर्द नहीं घूम रहा, पृथ्वी उसके चारों ओर प्रदक्षिणा कर रही है। उसके विरोधियों ने उसे आग में जला दिया—पर उसने अपना सिद्धांत नहीं छोड़ा। यह मृत्यु थी या अमरता ?

सुकरात मरते समय अमृतत्व का स्वाद ले रहा था। मरते समय वेटे से कहा "अधिक प्रकाश, अधिक प्रकाश"। तुकाराम महाराज 'राम कृष्ण हरि' गाते-गाते हंसते-हंसते चल दिए। समर्थ ने कहा 'क्यों रोते हो ?' मेरा 'दास बोध' तो है। लोकमान्य 'यदा यदा हि धर्मस्य' वाला श्लोक बोलते-बोलते चले गये। गांधी जी दोनों हाथ जोड़े हुए 'हे राम' कहकर संसार से विदा हुए।

इस लिए मृत्यु कविता है। मृत्यु रस है। मृत्यु प्राण है। मृत्यु नव-जीवन का आरम्भ है मृत्यु आनन्द का दर्शन है। मृत्यु मानो परमात्मा-जीवात्मा के मिलन का संगीत है। मरकर अपने प्रियतम के पास जाना है। किसी ने कहा है :—

करले शृंगार चतुर अलवेली। साजन के घर जाना होगा॥
माटी ओढ़ावन, माटी बिछावन। माटी में मिल जाना होगा॥
नहा ले, धो ले, सीस गुंथा ले। फिर वहां से नहीं आना होगा॥

मनुष्य बनो

मनुर्भव (मनुष्य बनो)

शेखसादी ने एक घटना का उल्लेख किया है। वह उन्हीं के शब्दों में सुनिए :—

एक बार दमिश्क में ऐसा सूखा पड़ा कि लोग भूखों मरने लगे। पानी नाम की वस्तु यदि कहीं मिल सकती थी तो वह सिर्फ दुःखियों की आंखों में। पत्ते झड़ जाने के कारण पेड़ फकीरों की तरह नंगे हो गये थे।

ऐसे में एक मित्र मिलने आया। देखा, तो बड़ा सदमा पहुंचा। किसी जमाने में नगर का यह धनी-मानी व्यक्ति था, जो आज सूखकर अस्थि-पंजर रह गया था।

मैंने उससे पूछा—"मेरे नेक दोस्त, भला तुम पर ऐसी कौन-सी मुसीबत आ गई, जो तेरा यह हाल हो गया?"

यह सुनते ही उसे क्रोध आ गया और लाल आंखों से मुझे दुत्कारता हुआ बोला "अरे दीवाने सब कुछ जानते हुए भी मुझसे पूछता है? क्या तेरी अक्ल खो गई है?"

मैंने उसे तसल्ली देते हुए कहा। लेकिन तुझे इन सबसे डर क्यों हो, क्योंकि जहर तो सिर्फ वहीं फैलता है जहाँ अमृत नहीं होता है? मगर तू तो रोजमर्रा की जरूरतों से उसी प्रकार सुरक्षित है, जैसे तूफान में वतख।'

मेरी बात सुनकर बड़ी रंजीदगी से उसने मेरी तरफ देखा। लग रहा था जैसे कोई बड़ा बुद्धिमान् और चतुर व्यक्ति नासमझ की ओर देख रहा हो।

उसने एक सर्द साँस ली, मानों मुझ पर रहम कर रहा हो और कहा—"मेरे अनजान भाई, अगर किसी के सब दोस्त दरिया में डूब रहे हों और वह अकेला किनारे पर खड़ा रहा हो, तो उसे कैसे चैन नसीब हो सकता है? मेरे चेहरे का रंग पीला हो जाने का कारण यह नहीं है कि मेरे पास धन नहीं रहा, बल्कि यह है कि मेरे सारे पड़ोसी भूख की आग से तड़प रहे हैं। क्या तू यह नहीं जानता, कि अक्लमन्द वे हैं, जो न तो खुद जख्मी होना चाहते हैं और न दूसरों को जख्मी देखना चाहते हैं। क्या उस तन्दुरुस्त आदमी का जीवन कभी सुखी हो सकता है, जिसकी

बगल में एक बीमार कराह रहा हो ? यही हालत मेरी है। जब मैं देखता हूं कि मेरे आस-पास हाय-हाय मची हुई है तो मेरे हलक का निवाला मेरे लिए जहर बन जाता है।"

—शेखसादी

सीख—वेद ने सच कहा है "केवलाघो भवति केवलादी" अकेला खाने वाला पापी है।

शासक का पाप जनता को खाता है

शेख सादी की लिखी दूसरी घटना उन्हीं के शब्दों में पढ़िए—

कबाद बादशाह लश्कर (सेना) से बिछुड़ गये। गर्म हवा के कारण प्यास से वह बेचैन हो गया। वह चारों ओर देखता था और छांह तथा पानी की खोज में था।

दूर से उसे एक काली चीज दिखाई दी। वह घोड़े को उधर ले गया। उसने एक पुराना खेमा देखा, जो एक जंगल में लगा था; और एक बूढ़ी औरत अपनी लड़की के साथ वहां रह रही थी।

जब कबाद आया, वह औरत खेमे से बाहर निकली उसने लगाम थामकर उसे उतारा और उसके पास जो खाना था उसके सामने रखा। कबाद ने थोड़ा-सा खाया, पानी पिया और वहां आराम करने लगा। सो-कर उठा तो नावक्त हो गया था। इससे रात में वहीं रह गया।

शाम की नमाज के बाद एक गाय जंगल से आयी। औरत की लड़की ने गाय को दुहा। बहुत दूध निकला। कबाद ने यह देखकर आश्चर्यचकित होकर अपने मन में कहा, 'ये लोग इसलिए जंगल में रहते हैं कि कोई इनके भेद से वाफिफ न हो। हर रोज इतना दूध एक गाय से पाते हैं अगर हफ्ते में एक दिन का दूध बादशाह को दे दें, तो इनके माल में कमी न होगी, उधर बादशाह का खजाना बढ़ जायेगा।' उसने राजधानी में पहुंचते ही टैक्स लगाने की बात सोची।

जब सवेरा हुआ, लड़की ने गाय को दुहने के लिए पकड़ा तो बहुत

थोड़ा दूध मिला। वह चिल्लाई और दौड़कर मां के पास गई। उसने कहा, "मां भगवान से प्रार्थना कर बादशाह की नीयत जुल्म करने की हो गयी।" उसे कबाद की वास्तविकता का पता न था।

कबाद को आश्चर्य हुआ, उसने लड़की से पूछा, "तुमने कैसे जाना?'

लड़की बोली, "हर सुबह का हमारी गाय बहुत ज्यादा दूध देती थी। आज उसने बहुत कम दिया। जब बादशाह की नीयत बिगड़ जाती है तो भगवान् बरकत उठा लेते हैं।"

कबाद ने कहा, "तुमने सच कहा।" उसने बुरी नियत को दिल से निकालकर कहा, "अच्छा, अब फिर अपने काम पर जाओ।"

लड़की ने जब गाय को फिर से दुहा, बहुत दूध निकला। मां के पास जाकर बादशाह की नेकनीयती की खुशखबरी पहुचाई।

और इसी से लोगों ने कहा कि न्यायी बादशाह बरसने वाले बादलों और चमकने वाले सूर्य से अच्छा है।

हर एक बूंद जो बादलों से टपकती है।
बादशाहों की अच्छी नियत से होती है।
जब बादशाह की नियत बिगड़ जाती है।
तो बादलों से पानी नहीं अंगारे बरसते हैं।

—शेखसादी

मानव धर्म का अपमान

क्रिस्टोपुर ईशखुडने एक घटना लिखी है। उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

रिपब्लिक के छठे वर्ष के जाड़े का एक दिन था। मैं रोज की तरह सवेरे-सवेरे काम पर जा रहा था। साधारणतः वह समय ऐसा होता है, जब वर्फ जैसी ठण्डी हवा के कारण शायद ही कोई सड़क पर दिखाई देता हो। मैंने एक रिक्शा किया और दक्षिणी पुटिक की ओर चल पड़ा। रिक्शा

तेजी से चल रहा था। दक्षिणी फाटक जब एक दम निकट आ गया था कि मैंने देखा कोई सड़क पार करने के लिए एकाएक आगे बढ़ा, पर रिक्शे का धक्का संभाल सकने के लिए वह लुढ़क पड़ा।

अरे, यह तो चिथड़ा लपेटे एक बुढ़िया थी। उसके बाल सफेद हो गये थे और जब तक हमारा रिक्शा रुके, वह औरत जमीन से उठ तो गयी था, लेकिन पैर पकड़े झुकी ही रही। रिक्शे वाले ने रिक्सा रोक दिया। मैं उसकी मूर्खता पर कुढ़ रहा था। सामने ही थाना था – मुझे लगा कि वह जान बूझकर कानून के चक्कर में फंसने की तैयारी में है।

मैंने उससे कहा भी कि बढ़ चलो, किन्तु वह तो उतर कर बुढ़िया के पास पहुच चुका था और उसे सहारा देते हुए थाने की ओर बढ़ने लगा था।

मैं स्तब्ध रह गया। वह ज्यों-ज्यों थाने के निकट पहुंचता जा रहा था, मुझे लग रहा था कि वह मानव से देवता में बदलता जा रहा था। अरे, उसने यह क्या किया ? वह तो सीधा थाने में घुस गया है।

मेरी आत्मा स्वयं ही मुझे धिक्कार उठी—कायर कहीं का। मानव को स्वधर्म से विचलित करने वाले शैतान।

दूसरे ही क्षण एक पुलिस का अधिकारी आकर बोला "आप दूसरा रिक्शा कर लें, वह अभी न जा सकेगा।"

अचेतन में मेरा हाथ जेब में चला गया। मुट्ठी में जितने पैसे आ सके, निकाले और पुलिस अधिकारी को दे दिये "लो, ये पैसे उसे दे देना।"

बस, वह घड़ी शैतान की जीत की घड़ी थी—ऐसी घड़ी जिसमें इनसान शैतान के सामने घिघिया कर अपनी सारी विराटता को तिलांजलि दे देता है।

क्या अधिकार था मुझे यह पुरस्कार देने का ? जीवन के एकाकी क्षणों में जब अन्तर्यामी अपना लेखा-जोखा सम्भालने लगता है, तो यह प्रश्न मेरी चेतना पर वज्र की तरह कौंध जाता है—और इसी आघात से

मेरी आत्मा चीत्कार कर उठती है। जहां श्रद्धा के फूल चढ़ाने थे, वहां मैंने पैसों का दान दिया। क्या मनुष्य धर्म का यह महान अपमान नहीं।

—क्रिस्टोपुर ईशखुड

घड़ियाल क्यों हंसा ?

अवन्तिका के एक मोक्ष आकांक्षी वनिये के घर गीता पाठ के लिए जाते हुए ब्राह्मण को शिप्रा तट पर एक घड़ियाल मिला। ब्राह्मण के निकट पहुंचते ही उसने कहा "पंडित जी, पहले गीता मुझे सुनाइये फिर सेठ जी को। भेंट भी अग्रीम दे रहा हूं।" ब्राह्मण ने देखा कि मोतियों का एक मूल्यवान हार घड़ियाल ने उसके सम्मुख रख दिया है। फिर क्या था ? ब्राह्मण प्रतिदिन गीता पहले घड़ियाल को सुनाता, पीछे सेठ जी को।

गीता का पाठ खत्म हो गया। घड़ियाल ने ब्राह्मण को मोतियों का हार घट दक्षिणा में दिया। "पंडित जी यदि आप मुझे त्रिवेणी में छोड़ आएं तो मैं इस प्रकार के पांच घट आपको और दूंगा।" ब्राह्मण ने घड़ियाल की वात मान ली और उसे लेकर त्रिवेणी तट के लिए चल पड़ा। कई दिन की यात्रा के बाद वे त्रिवेणी तट पर पहुंच गये। घड़ियाल ने वचनानुसार पांच घट और ब्राह्मण को दिये, किन्तु जब ब्राह्मण खुशी-खुशी वापस चलने लगा तो उसने देखा कि, घड़ियाल उसकी ओर सम्य मुस्करा रहा है। पूछने पर घड़ियाल ने बताया "आप अवन्तिका जाकर धोवी के गधे से मिलिए। वह इसका अर्थ आपको बतलाएगा।

अवन्तिका लौटने पर ब्राह्मण धोवी के गधे से मिला। गधे ने कहा "पूर्व जन्म में मैं कौशल नरेश का परिचारक था। नरेश एक बार त्रिवेणी पर तप करने के लिए गए। त्रिवेणी के सौन्दर्य को देखकर वे इतने आनन्दित हुए कि उन्होंने राज-पाठ छोड़ कर शेष जीवन वहीं ईश्वर भजन में बिताने का संकल्प कर लिया। मुझ पर महाराज का बड़ा स्नेह था। अत: वे अनुग्रह के साथ बोले—"इच्छा हो तो यहीं हमारे साथ रहो, तुम्हारी आयु भी सौ के लगभग हो रही है, अन्यथा यह लो एक सहस्र मुद्रा और कौशल लौट जाओ। धन वैभव के व्यामोह में मैं कौशल लौट आया।

तुमने भी यही गलती की। बुढ़ापे में घड़ियाल जैसे पामर जीव ने भी आत्मशान्ति के लिए अपनी व्यवस्था कर ली। किन्तु तुम मनुष्यों में भी श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी धन की तृष्णा में अभी दर-दर भटक रहे हो। तुम्हारी यही मतिमन्दता देखकर वह घड़ियाल हंसा था।

—रत्न मञ्जरी से

क्षण भंगुर जीवन की कलिका, कल प्रात को जाने खिली न खिली।
मलयाचल की शुचि शीतल, मन्द सुगन्ध समीर चली न चली।
कर काल कुठार लिए फिरता तन नम्र है चोट झिली न झिली।
जप 'ओ३म्' का नाम अरी रसना फिर अन्त समय में हिली न हिली।।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्।। यजु० ३५।४

अश्वत्थ पर तेरी बैठक है। पता नहीं कल भी यह शरीर रहेगा या नहीं? पीपल के पत्ते पर तेरा निवास है। पता नहीं वायु के झोके से कब अलग हो जावे? अब प्रभु का नाम जप।

मांस खाना ठीक नहीं

मांसं नाश्नीयात्। अथर्व० १०।६ (३) ६।

मांस नहीं खाना चाहिए। मांस-भक्षण से अनेक हानियां हैं। विचार एवं मन को यह दूषित करता है। मांस-भक्षण से मनुष्य के हृदय से दया के भाव दूर हो जाते हैं और निर्दयता अपना स्थान बना लेती है। इससे मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तथा बौद्धिक शक्तियों का ह्रास होता है। मनुष्य व्यवहार में अशिष्ट और जंगली बनने लगता है। पाइथागोरस, प्लेटो, अरस्तू, सुकरात, राम, कृष्ण, दयानन्द, गांधी और जार्ज बर्नार्ड शा मांसाहारी नहीं थे।

एक बार नई दिल्ली में शाकाहारी क्लब का उद्घाटन करते हुए लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष अनन्त शयनम् आयंगर ने मांस-भक्षण के

विरोध में कहा—'भोजन के लिए हत्या जंगली पशुओं का स्वभाव है।'

जार्ज बर्नार्ड शा एक बार एक दावत में गए हुए थे। वहां अधिकतर वस्तुएं मांस से बनी हुई थीं और बर्नार्ड शा मांस खाते न थे। अतः उन्होंने फल और सब्जियां तो ले लीं और मांस की प्लेटों को आगे सरका दिया।

दावत देने वाले मित्र ने आग्रह से कहा—'क्यों ये चीजें आप क्यों नहीं ले रहे है ?'

अपनी लट्ठमार शैली में शा बोले—"जनाब मुझे ईश्वर ने भोजन करने को पेट दिया है, मुर्दे दफनाने का कब्रिस्तान नहीं है।" वही मान्य श्री आयंगार की बात कि भोजन के लिए हत्या जंगली पशुओं का स्वभाव है कितनी उपयुक्त है। पर, यह कितनी विचित्र बात है कि विश्व में अधिकांश मनुष्य मांस-भक्षी हैं और मांस-भक्षण का प्रचार बढ़ रहा है।

प्रभु का स्मरण

राधसे जज्ञिषे ऋ. (५।३५।४)

हे जीव! (राधसे) ईश्वर प्राप्ति के लिए (जज्ञिषे) उत्पन्न हुआ है।

एक अत्यन्त रूपवती रमणी के लिए उसके पति ने एक सुन्दर— बहुत सुन्दर नथ बनवा दी। चरम अभाव में जब भाव आ पड़ता है, कभी-कभी उसकी विकृति कृति से आगे बढ़ना चाहती है। उस रमणी के साथ भी यह हुआ। अपनी नथ के सौन्दर्य तथा उसके मूल्य का दूसरों पर प्रभाव डालने के लिए निकल पड़ी। बस्ती के विशेष परिवारों को नथ दिखाने और प्रशंसा पाने के लिए निकल पड़ी। इसके और उसके वहां जाते-जाते रमणी मन्दिर भी गई और वहां रहने वाले साधु बाबा को भी जाकर प्रणाम किया। साधु रमणी के आन्तरिक भावों को समझ गये और उन्होंने उससे पूछा—"बेटी, नथ कब बनबाई है, बहुत सुन्दर बनी है।" रमणी यही सुनना चाहती थी गद्गद् हो गई और उसने साधु महाराज को उसका मूल्य आदि बतलाया। साधु महाराज सब सुनने के बाद बोले, "जिस प्रकार नथ बनाने वाले की कीर्ति को फैलाने के लिए तुम मन्दिर

तक चली आई हो बेटी, उसी तरह नथ देने वाले के पहले कभी नाक देने वाले का भी स्मरण किया है ?"

अरे भोले मानव ! देख ! इस सुन्दर शरीर को, इस विशाल विश्व को इन हरे-भरे मैदानों, ऊंचे पर्वतों, निरन्तर कल-कल कर बहती नदियों, दूर-दूर तक फैले रेगिस्तानों को बनाने वाले का क्या हम स्मरण करते हैं ? कभी क्या हमने सोचा है 'इस रंग-बिरंगी भूमि का रचयिता कौन है ? कहीं इस पृथ्वी पर वेलबूटे हैं, कहीं फूलों की क्यारियाँ हैं। कहीं फलदार वृक्ष झूम रहे हैं ? इन सबको किसने बनाया ? खेत में किसान ने लगाया किन्तु वन में किसने सजाया? आकाश में झिलमिल करते तारों को किसने उत्पन्न किया ? फूल की पंखड़ियों में तितली के पंखों में, परिन्दों के परों में, बादलों में, इन्द्र धनुष में, प्रभात की ऊषा में, संध्या की छिटकती लाली में, कौन चित्रकार बैठा अपनी तूलिका से किस्म-किस्म के रंग भर रहा है ? पवन के झकोरों में, झरनों की झरझर में, बादलों के गर्जन में, पक्षियों के कलरव में प्रपातों की झंकार में और नदियों की कल-कल में कौन गवैया बैठा अपनी संगीत की सुरीली तान छेड़ रहा है ?

साधु ने कहा, 'बेटी उस सौन्दर्य के रचयिता प्रभु का स्मरण कर उसका ध्यान कर और अपने सुन्दर कारनामों से उसकी कीर्ति फैला।

यज्ञमय जीवन

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु. २३/६२)

यह यज्ञ संसार की नाभि है, केन्द्र है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर भाषण देने जा रहे थे। उनके चप्पल की कील उखड़ी थी। पर उसकी ओर उनका ध्यान नहीं गया। गुरुदेव उसे ही पहन कर सभा में भाषण देने के लिए चल पड़े। कील की ओर कोई ध्यान दे या न दे। वे टैगोर हों या डाकू वह तो चुभेगी ही। तो वह चुभी और गुरुदेव के पैर से रक्त की धारा बहने लगी।

गुरुदेव का भाषण हुआ। अत्यन्त मार्मिक और उद्बोधक भाषण था। भाषण समाप्त करने के बाद जब गुरुदेव मंच से जाने लगे तो लोगों ने देखा चप्पल खून से लतपथ है। काफी देर में इतना खून बहा होगा, पर गुरुदेव के भाषण का रस भरा प्रवाह तो क्षण भर के लिए भी नहीं रुका था।

"जब काट रहा था तब आप रुके क्यों नहीं ?" किसी ने पूछा, तो गुरुदेव बोले, "सब बन्धु भाषण सुनकर आनन्द का उपभोग करने आये थे। उन्हें अपना दुःख परसना मुझे अशोभन लगा, इसलिए उसे अपने में समेटे मैं आनन्द परसता रहा।"

सबने सोचा—दुःख अपने लिए और सुख दूसरों के लिए की भावना और स्वयं दुःख में होते हुए भी दूसरों को दुःख से बचाने की सतर्कता रखना यज्ञमय व्यक्ति के लिए ही संभव है।

एक समय मिश्र में राजा कवि वेन राज्य करता था। नील का देवता इससे बहुत प्रसन्न हुआ और प्रकट होकर उसे एक तलवार दी और कहा :—

"राजन् ! ले यह तलवार। इसे लेकर तू विश्व विजयी होगा।"

"प्रभु ! मुझे तलवार नहीं चाहिए। विश्वविजय करके मैं क्या पाऊँगा।" "अच्छा, यह पारस पत्थर ले। तू देवताओं से भी अधिक धन इकट्ठा करेगा।"

"प्रभो ! इतना धन लेकर क्या करूंगा ?"

"तो ले यह स्वर्ग की सबसे सुन्दर अप्सरा ?"

"पर, प्रभो ! अप्सरा पाकर जीवन की कौन-सी सिद्धि पा जाऊंगा ?

"तो ले यह फूल का पौधा। यह जहाँ उगेगा वहां के जड़-चेतन, शत्रु-मित्र, सभी सुगन्ध से सुवासित हो जायेंगे।"

कहते हैं कि वेन ने वह पौधा ले लिया। यह सोचकर कि तलवार का पानी उतर जाता है। धन चंचल है इसका दुरुपयोग हो जाता है,

सुन्दरी की श्री ढल जाती है, पर फूल का सम्मान नहीं घटता। फूल की सुरभि में देवता भी पृथ्वी पर आकर अपनी सुरभि फैलाने लगते हैं। अपना जीवन पुष्प के समान सुगन्धित बनाओ। इसे यज्ञमय जीवन कहा जाएगा।

जीवन दीक्षा के अज्ञात लेखक के इन चार सूत्रों को जीवन में ध्यान रखिए :—

१— जहां तक सम्भव हो कोरी भावुकता से वचकर काम करो।
२— बुरे को भूलकर अच्छे को देखो।
३— जमकर काम करो।
४— अन्दर ही अन्दर सहते रहो, जलते रहो पर रचनात्मक बने रहो।

यज्ञमय जीवन के ये मूल मन्त्र हैं।

जीवन यज्ञ है

यज्ञस्य शिवे तिष्ठस्व। यजुर्वेद २।१६।

(यज्ञस्य) जीवन यज्ञ के (शिवे) शुभ अनुष्ठान में सुसंपादन में (संतिष्ठस्व) संस्थित हो जा, लग जा।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।। ऋ० १।१६४।३५ ।।

सम्पूर्ण संसार की नाभिः यह यज्ञ है।

मतिश्च में सुमतिश्च में यज्ञेन कल्पन्ताम्।। यजुर्वेद १८।११ ।।

मेरी मति और सुमति यज्ञ से सामर्थ्यशील होवें।

बालको! 'यज्ञ' शब्द, यज धातु से बना है। यज्ञ का अर्थ है 'देव पूजा' 'संगतिकरण' और 'दान' इन सबको मिलाकर एक शब्द में कहा जाय तो 'यज्ञ' का अर्थ है, 'श्रेष्ठतम या प्रशस्ततम कर्म।' सबसे श्रेष्ठ, सबसे प्रशस्त या सर्वोपयोगी जो कर्म होता है वही प्रशस्ततम कर्म कहलाता है। जिस कर्म से श्रेष्ठों का सम्मान, सबके साथ अभिन्नता और परोपकार होता है, वह

प्रशस्ततम कर्म है। इस प्रकार के कर्मों के प्रति अपने आपको समर्पित करने से अपना मन शक्तिशाली और समर्थ होता है। तात्पर्य यह है कि अपने आपको ऐसे कर्मों में लगाना चाहिए जिससे सबका हित हो, सबका कल्याण हो। ऐसा करने से मन की शान्ति बढ़ती हैं। उसमें सामर्थ्य आता है।

स्वामी दयानन्द एक बार जोधपुर जाने लगे तो लोगों ने उन्हें वहां से रोकना चाहा और उन्हें बतलाया कि वहां न जाइए, वह गंवार देश है, वहां के लोग शरारती हैं परन्तु स्वामी जी ने कहा, यदि हमारी अंगुलियों को बत्ती बनाकर जला दें तो भी परवाह नहीं, हम जनता को सच्चा मार्ग बता कर रहेंगे। यदि यह शरीर न भी रहा तो भी चिंता नहीं। जब स्वामी जी को वहां जाने को तत्पर देखा तो एक भक्त बोला, 'महाराज! वहां जरा नरमी बरतना, वह क्रूर देश है।' स्वामी जी मुस्कराए और बोले, मैं असत्य और अधर्म के जंगी वृक्षों की जड़ काटने के लिए कुल्हाड़ी से काम लूंगा, न कि नापितों के नेहरनी से तराशूंगा। मुझे किसी का भय नहीं है। यह है प्रशस्ततम मार्ग जिस पर यज्ञीय पुरुष चला करते हैं।

अनूपशहर में स्वामी दयानन्द का सत्संग चल रहा था। सत्संग प्रभावशाली और शिक्षाप्रद होता था। अतः उसमें अन्य धर्मावलम्बी भी आते थे। आने वालों में वहां के तहसीलदार सय्यद मुहम्द भी थे। एक बार एक ब्राह्मण ने उनकी मूर्ति पूजा के खण्डन के भाषणों से चिढ़कर उन्हें पान में विष दे दिया। तहसीलदार को जब यह पता चला तो उसने उसे कैद करा दिया और प्रसन्न हो गए कि मैंने स्वामी जी के शत्रु से बदला ले लिया। परन्तु स्वामी जी सदा पाप से घृणा करते थे, पापी से नहीं। उन्होंने तहसीलदार से कहा, मैं दुनिया को कैद कराने नहीं आया, कैद से छुड़ाने आया हूं। वह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें ? यह है उदारता, यह है परोपकार।

कोई भी नया काम करने के लिए, सुधार करने के लिए या क्रांति करने के लिए जीवन को यज्ञमय बनाना होता है। बालको, संसार में यज्ञ हो रहा है। सूर्य, वायु, चन्द्रमा, पृथ्वी और आकाश यज्ञ कर रहे हैं। देखते

नहीं दीपक की बत्ती अपने को जलाकर भस्म कर देती है और भटकों को मार्ग दिखला जाती है, क्या तुम देखते नहीं, बीज अपने को मिट्टी में मिला देता है और अपने स्थान पर अनेकों को जन्म दे देता है। ग्रीष्म ऋतु में जब पृथ्वी तवे की तरह गर्म होकर तप रही होती है तब पानी की न जाने कितनी नन्हीं-नन्हीं बूंद अपने को मिटा कर पृथ्वी को शीतल कर देती हैं यह सब यज्ञ ही तो है। परन्तु इनमें कोई अपने कार्य का, अपने यज्ञ का, अपने बलिदान का ढिढोरा नहीं पींटता। वह अपना लक्ष्य पूरा करने के लिए बढ़ता चला जाता है।

सूर्य को देखा होगा कि उसने कितनी जगह का अन्धेरा दूर किया है। यदि हम उससे कहें कि सूर्य देव! आपका हम पर कितना उपकार है कि आपने सारा अन्धकार दूर कर दिया। तो सूर्य कहेगा, 'मैंने कहाँ का अन्धकार दूर किया? लाओ मुझे थोड़ा-सा दिखाओ तो? मैंने तो अंधेरा देखा ही नहीं है फिर दूर कहाँ से करूं? मैं तो केवल प्रकाश करना जानता हूं। रात-दिन जलते रहना ही मुझे मालूम है। सूर्य ने अपने जीवन का यज्ञ कुण्ड सतत प्रदीप्त रखा है। यही कारण है कि उसकी गर्मी से प्राणी मात्र जीवित रहते हैं, फूल-फल उत्पन्न होते हैं, वनस्पतियां बढ़ती रहती हैं। सारे संसार का कार्य चल रहा है। वह सारे संसार की आत्मा है।

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"

माहात्मा बुद्ध, शंकर, स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गांधी का जीवन यज्ञमय जीवन का उदाहरण है। यज्ञ ही जीवन है। यज्ञ ही सब कुछ है। हमें यज्ञ की सत्कर्म की आदत होनो चाहिए। सूर्य जलना जानता है। बादल बरसना जानता है। हवा बहना जानती है। सन्त दूसरे के आंसू पोंछना जानते हैं। जीवन में सत्कर्म मुख्य वस्तु है। जिन्होंने अपने सामने कोई लक्ष्य रख लिया। सत्कर्म रख लिया—वे जीवन में प्रकाश दे जाते हैं।

श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम सज्जनता और दयालुता के लिए सारे भारत में जान-पहचाना है। उनकी शिक्षा-दीक्षा उनकी ख्याति, उनकी

सामाजिक प्रतिष्ठा व धन सम्पत्ति आदि सब उनके जीवन में भिन्न-भिन्न भागों से आए परन्तु उनका चरित्र पूर्णतया उनकी माता की देन थी। उनकी माता का नाम भगवती देवी था। एक संध्या को भगवती देवी घर के काम में जुटी थीं। पडोस के गांव से एक गरीब स्त्री छाती से अपने छोटे से बच्चे को चिपटाये हुए आयी। वह और उसका बच्चा दोनों सर्दी से कांप रहे थे! बर्फीली हवा चल रही थी। उसने भगवती देवी से कहा— 'मां जी, अगर कोई फटा-पुराना कपड़ा हो, तो दे दो। बहुत ठण्ड लग रही है। बच्चे को ढांप लूंगी। भगवती देवी का हृदय पसीज गया। वे घर में गईं और अपने बिस्तरे में से एक नई बनी हुई रजाई निकाल लायीं। उस रजाई को उसे देते हुए बोलीं, लो यह फटे-पुराने कपड़े से अधिक गर्म रहेगी।

भगवती देवी के पास ओढ़ने के लिए केवल वही रजाई थी। उसे दे देने के बाद उन्होंने किसी से उसकी चर्चा तक नहीं की और स्वयं सर्दी से ठिठुरती रहीं। उन्होंने अपने कष्ट की जरा भी परवाह न की, उन्होंने अपना दुःख भुलाकर इसी बात से संतोष कर लिया कि आखिर उस मां और बच्चे को भी तो जाड़े से बचने के लिये कुछ चाहिए था। इसी माता के पुत्र थे, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जिनके यज्ञमय जीवन की कहानियां जहां-तहां सुनाई पड़ती हैं और जिनको जन्म देकर भारत माता गौर-वान्वित हुई है।

श्री मिचेल मधुसूदन दत्त बंगाल के कवियों में बहुत प्रसिद्ध हैं। वे जितने प्रतिभावान् थे उतने ही उदार भी। ऐसे ही बंगाली लेखक श्री राजकृष्ण राय भी थे। राय के विषय में कहा जाता है कि वह कवि थे, तो नाटककार भी थे, अनुवादक भी थे, तो निबन्धकार भी थे, मतलब यह कि साहित्य का कोई ऐसा अंग नहीं था जो उनसे छूटा हो। कहा जाता है कि एक बार एक नाटक में उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लगा दी। वह नाटक असफल हो गया, उनके भूखे मरने के दिन आ गये। वे एक प्रकाशक के पास गए। वह रुपये देने को राजी हो गया। उन्होंने रुपये लेकर अभी उसे धन्यवाद भी नहीं दिया था कि एक सज्जन वहीं उनके पास आए।

उन्होंने कहा कि उनकी पत्नी गांव में बीमार पड़ी है और उसकी अन्तिम सांसे चल रही हैं। वह इस समय उनके पास जाना चाहते हैं, मगर यात्रा के लिए पास में पैसे नहीं हैं।

इस पर राय बाबू का हाथ अपनी जेब में गया और सब धन उसको दे दिया। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि इस धन से वह उसी दिन की निकट आवश्यकताओं को पूरी करने वाले थे। उस व्यक्ति ने उन्हे बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। मगर राय बाबू ने कितना बड़ा त्याग किया था। यह उसे इस समय कुछ मालूम नहीं हो सका।

यज्ञीय भावना जय या पराजय, सिद्धि या असिद्धि, यश या अपयश, सुख या दुःख की ओर ध्यान नहीं देती। समुद्र में ज्वार आता है और भाटा भी, लेकिन उसकी धीर गम्भीर गर्जता कभी नहीं रुकती, उसका यज्ञ कर्म चलता रहता है। हमारा विकास मुख्य. वस्तु है। सत्कर्म मुख्य वस्तु है। यज्ञीय व्यक्ति विजय से उन्मत नहीं बनता, पराजय से निराश नहीं होता। जब स्वामी दयानन्द का इस लोक से चलने का समय आया तो वे बोले, 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।' कर्म करने वाले को—यज्ञ करने वाले को चाहे फांसी मिले, चाहे सिंह मारे, चाहे फूल की माला मिले, चाहे दुःख मिले; चाहे यश मिले, चाहे अपयश मिले, सच्चे यज्ञीय पुरुष की अभिलाषा यही रहेगी, कि हम 'प्रशस्ततम' कर्म करते चलें, बालको ! याद रखो जीवन में विजय के नगाड़े मत बजाओ और पराजय का रोना मत रोओ। तुम दोनों के ऊपर पहुंच कर, दोनों के ऊपर सवार होकर निर्द्वंद्व होकर सदैव स्वकर्म करते रहो। यही सच्चा महान् धर्म है।

मैं शक्तिशाली हो गया हूं

नहि मे अक्षिपच्चनाऽच्छान्त्सुः पञ्चयष्टयः कवित् सोमस्यापामिति ।। ऋ॰ १० । ११९ । ६

(पंचयष्टयः) सब प्रकार के लोभ (मे) मेरे (अक्षिपत्चन) दृष्टि प्रसार को भी (नहि) नहीं (अच्छान्त्सुः) रोक सकते मेरी भौतिक और

मानसिक दर्शन शक्ति की गति से नहीं रोक सकते। (कुवित्सोमस्यापामिति) मैंने सोम रस का बहुत बार पान किया है।

मनुष्य जब प्रभुभक्ति के सोम रस का पान करने लगता है तब उसे अपने स्वरूप की पहचान होने लगती है। उससे मनुष्य को विश्वास हो जाता है कि उसमें ऐसी दिव्यता है जिसे कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। हमारा भौतिक जीवन कुछ भी क्यों न हो, पर यह दिव्यता कभी दूषित नहीं होती, कभी मिट नहीं सकती। मनुष्य की अधिकतर शक्तियां इस बात पर निर्भर करती हैं कि उसने प्रभु की भक्ति के रस का कहां तक पान किया है, वह ईश्वर के कितना निकट पहुंचा है, उसने ईश्वर से कितनी एकता स्थापित की है। जितना ही वह ईश्वर की भक्ति के मादक रस का पान करेगा वह ईश्वर के निकट पहुंचेगा, उतनी ही उसकी योग्यता बढ़ती जायगी और उसका जीवन उतना ही महान हो जाएगा जितना ईश्वर से उसका सम्बन्ध बढ़ता जाएगा।

वास्तव में होता यह है कि मनुष्य ईश्वर से जितना सम्बन्ध जोड़ता है उतनी ही उसमें मस्ती आती है और यह मस्ती उसकी आत्मा में जीवन, सत्य और सौन्दर्य के तत्त्वों का विकास करेगी। उसकी आत्मा नई शक्ति नए साहस के संचार से हरी-भरी होकर खिल उठेगी। उस समय मनुष्य अपनी मस्ती में उतना ही महान होता जाएगा। जितना वह अपनी आत्मा में प्रभु के सत्य, त्याग, दया, प्रेम, शक्ति तथा आनन्द के गुणों को विकसित करेगा। इन गुणों का मूल परमात्मा ही है।

जब तक हमें सोम रस का—प्रभु की भक्ति के सोम रस का आनन्द नहीं मिलता उसी समय तक अनिश्चितता से हमारा मन व्याप्त हो जाता है। कमजोरी हमारी नस-नस में फैल जाती है। चिन्ता और खिन्नता परमात्मा से सम्बन्ध विच्छेद के कारण आते हैं। परन्तु जब हम आध्यात्मिक रस का अनुभव करने लगते हैं तब हमारी सब कमजोरियां और विपत्तियां रफूचक्कर होने लगती हैं। तब हमें विश्वास होने लगता है कि संसार की कोई शक्ति हमारे दृष्टि प्रसार को—मानसिक और भौतिक दर्शन शक्ति को नहीं रोक सकती हैं।

उस सोम रस के पान से हम सोचने लगते हैं। हम भी प्रभु की तरह सत्य स्वरूप हो गए हैं। प्रेम, न्याय, सत्य,सौन्दर्य के हम तत्त्व हैं, इस बात को हम हृदय से मानने लगते हैं और तब एक अपूर्व शान्ति का अनुभव होने लगता है, हृदय में अद्भुत् शक्ति आ जाती है, निर्मलता के हमें दर्शन होने लगते हैं, धैर्य हमें प्राप्त हो जाता है आत्मा आध्यात्मिक भवन पर बहुत ऊंचे चढ़ जाती है।

सच तो यह है कि सोम रस का पान कर लेने से हममें जो मस्ती आएगी वह मस्ती हमारी सभी दुर्बलताएं, सब पाप, सूर्य के सामने के अन्धकार की तरह नष्ट कर देगी। बस एक बार सम्पूर्ण हृदय से प्रभु में विश्वास रखकर उसकी मादक सुधा का पान करो, वह अपनी अद्भुत् शक्ति से तुम्हें शक्तिशाली, अपने अद्भुत तेज से तेजस्वी, अपने अद्भुत सौन्दर्य से सुन्दर और अपने मंगल रूप से मंगलमय बना देगा और तब हम 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' प्रभु के सच्चे पुत्र बन सकेंगे। आइए, उस प्रभु का स्मरण करें—

तू दाता देता ही जाता। मैं भिक्षुक लेता ही जाता।
देने की सीमा ना तेरे, लेने का कुछ अन्त न मेरे।
प्रभो! उऋण कैसे हो पाऊं, किन दामों से मूल्य चुकाऊं।
केवल तेरी महिमा गा-गाकर, कर लेता मैं जी कुछ हल्का।
न जाने बेबस हूं कितना, फिर भी इसमें रस है इतना।
आजा मेरे दिल के राजा! आंखों में बन ज्योति समा जा।
दो शरीर हों एक प्राण हों, दो होकर भी एक जान हों।

जीवन में आगे रहो

प्रथमो विन्दते वसु। ऋ॰ ६।५४।४

जो जीवन में (प्रथमः) सबसे आगे रहता है, वही (वसु) ऐश्वर्य (विन्दते) प्राप्त करता है।

अरे मानव ! कार्य करे चल, लड़े चल, चले चल, यह तेरा जीवन का मन्त्र होना चाहिए। तुझे दूर-दूर बहुत दूर अपने अभीष्ट धाम पर पहुंच कर ही विश्रान्ति प्राप्त हो सकती है। रास्ते में कहीं नहीं कभी नहीं। तो और इधर-उधर के सोच-विचारों में पड़ने से क्या लाभ ? देख वहां तेरा गन्तव्य स्थान, तेरा ज्योतिर्मय धाम, तेरा असली अपना घर तुझे अनवरत बुला रहा है। तुझे निरन्तर लड़ना है। लड़-लड़कर ही अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना है, अपने विरोधियों को परास्त करना है और उनका पूरी तरह उन्मूलन करना है। आगे ही आगे बढ़ना यह जीवन पुरुष की निशानी है। ऐतरेय ऋषि के 'चरैवेति - चरैवेति' बढ़े चलो, बढ़े चलो की अमर वाणी को सुन और जीवन में आगे रह। 'प्रथमं नो रथं कृधि, (ऋ. ८।१०।५) 'हे प्रभो, मेरे जीवन रथ को आगे कर दो। वह जीवन शून्य है जो उठता नहीं, जो आगे बढ़ने का संकल्प नहीं करता। परमेश्वर की सच्ची उपासना कर सकने के लिए, प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ते हुए जीवन की दौड़ में आगे बढ़ने के लिए, तुम्हें अनथक प्रयत्न और पुरुषार्थ करके प्रथम लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए।

आपने यदि विज्ञान पढ़ा होगा तो बिजली के प्रसंग में आपने विद्युत विज्ञान के पिता सर माइकेल फराडे का नाम अवश्य सुना होगा। उन्होंने कहा है, 'मैंने निर्धनता को वरदान समझा है इसलिए कि निर्धनता ही मनुष्य का निर्माण करती है। आज जब हम न्यूटन, जेम्सवाट, एलियास होवे, थामस एल्वा, भामा, जगदीशचन्द्र वसु, एडीसन आइन्स्टीन आदि का नाम सुनते हैं तो हमें माइकेल फराडे का नाम भी इन व्यक्तियों मेंसुनाई देता है।

इनके पिता एक साधारण लुहार थे, उन दिनों लंदन में एक छोटा-सा मुहल्ला था, वारभौंडसी। उसमें जैकब स्टीट नामक छोटी गली थी। इसी गली में एक घुड़साल के एक कमरे में किराये पर एक गरीब लुहार रहता था। उसके पांच पुत्र थे। इसमें सबसे बड़े माइकेल फराडे थे। फराडे में बचपन से ही आगे बढ़ने की अभिलाषा थी। पिता की निर्धनता के कारण उच्च शिक्षा प्राप्त करना भी इनके लिए दुष्कर कार्य था। इसलिए १३

वर्ष की अवस्था में ही वेकर स्ट्रीट की पुस्तक विक्रेता की दुकान में चपरासी का काम इसको करना पड़ा। वहां पर रहते-रहते इसकी आगे बढ़ने की अभिलाषा के फलस्वरूप इसने समाचार पत्र पत्रिकाएं एवं पुस्तकें भी पढ़नी प्रारम्भ कर दीं। जो समझ में न आता था वह अपने स्कूल में पढ़ने वाले साथियों से पूछ लेता। धीरे-धीरे रसायन या विज्ञान की प्रवृति बढ़ने लगी।

यह व्यक्ति जब २१ वर्ष का हुआ, एक बार हेम्फरी डेवी का भाषण सुनने गया। उसने भाषण समझा, उसने उसका सार ग्रहण कर उसमें कुछ परिवर्तन कर संक्षिप्त रूप डेवी को भेजा। उन्होंने उसे देखकर इसकी लग्न, उत्साह, प्रतिभा और आगे वढ़ने को प्रवृति को समझ कर उसे अपना सहयोगी वना लिया। वहां इसने खूब उन्नति की तीस वर्ष की आयु में उसने महान् आविष्कार किया। प्रत्येक चुम्बक पत्थर विद्युत् धारा के चारों ओर चक्कर लगायेगा, इस सिद्धान्त का उसने आविष्कार किया आज मोटरें ट्रामगाड़ी तथा अन्य मशीनरियों का आविष्कार इसी सिद्धान्त पर हुआ। इसने विद्युत् शक्ति पर एक महान् ग्रन्थ भी लिखा। परिणाम यह हुआ कि आगे बढ़ने की प्रवृत्ति के सामने निर्धनता भी इसका मार्ग न रोक सकी। इसका जीवन सफल हुआ। इसका अन्तिम समय आनन्द से वीता और आज भी इसका नाम अमर हैं।

संसार में, कोई नहीं जानता कि आज का संकटापन्न निर्धन व्यक्ति भी बहुत कुछ कर सकता है। अतः 'प्रथमं नो रथं कृधि:' मन्त्र को अपने हृदय मन्दिर में टांग लीजिए।

प्राय: देखा जाता है कि मनुष्य अपने जीवन में कठिनाइयां आने पर हताश हो जाता है और डरकर कार्य से विमुख हो जाता है। मनुष्य जो कठिनाइयों से डर जाते हैं, जीवन की दौड़ में पीछे छूट जाते हैं। जो इसकी परवाह नहीं करते और आगे ही आगे वढ़ते रहते हैं, वे महान् हो जाते हैं। यदि आपने अपने मन में आगे वढ़ने का निश्चय कर लिया और विपत्तियों से घवराएं नहीं तो एक दिन संसार के इतिहास में आपका नाम अमर हो जाएगा।

महाराजा रणजीतसिंह की फौज और पठानों की फौज में युद्ध होने वाला है। दोनों सेनाएं अटक नदी के दोनों ओर एक दूसरे पर आक्रमण करने के लिए तैयार हैं, उनके बीच में अटक नदी का बाढ़ का पानी बांसों उछल रहा है। उसको पार करना आसान बात नहीं। महाराज रणजीतसिंह ने अपने सेनापति को नदी पार करने का आदेश दिया। सेनापति ने नदी की ओर इशारा करके बतलाया कि महाराज इस नदी को पार करना सम्भव नहीं। अपने बूढ़े, सफेद दाढ़ी वाले चेहरे पर नौजवानों की सी मुस्कराहट लाकर रणजीतसिंह बोले, असम्भव! असम्भव शब्द मैं नहीं जानता। उन्होंने अपनी तलवार पगड़ी में बांधी, घोड़े पर सवार हुए और कहा—

सर्वं भूमि गोपाल की या में अटक कहां,

जाके मन में अटक है सोई अटक रहा।

और अटक की वेगवती धारा में घोड़े सहित कूद पड़े। अब क्या था? वीर की वीरता को देखकर नदी सूख गई, पर क्या सचमुच नदी सूख गई? वास्तव में उनके बाद उनके साहस को देखकर सभी सैनिक कूद पड़े और उन्होंने पार जा पठानों को पराजित किया और भारत माता की जय-जयकार के साथ विजय पताका फहराई।

किसी ने कहा—

मन के हारे हार, है मन के जीते जीत।
पारब्रह्म को पाइए, मन के ही प्रतीत।

फ्रांस और इंग्लैंड में युद्ध चल रहा था। फ्रांसीसी सेनाएं एक के बाद दूसरा नगर खाली करती भागी चली जा रही थीं। भागते हुए सैनिकों के पास जाकर भेड़ चराने वाली लड़की ने पूछा, क्यों भागते हो? सैनिकों ने कहा, तुम भी भागो। अंग्रेज सेनाएं आ रही हैं। तुम्हें भी मार डालेंगी। बेइज्जत करेंगी। लड़की बोली, अंग्रेज सैनिक आ रहे हैं तो क्या हुआ? तुम मुझे अपने राजा के पास ले चलो। मुझे एक तलवार दो। और तब देखो मैं इन शत्रुओं की कैसी मरम्मत करती हूं। इतिहास साक्षी है कि

इंग्लैंड की आगे बढ़ती हुई सेनाओं को जिस बहादुरी से उसने पीछे धकेला उसका फल हुआ कि फ्रांस पराजय से बच गया, उसकी स्वतन्त्रता बच गयी। वह लड़की थी,'जौन द मार्क' जिसकी आज भी वहां स्वतन्त्रता की देवी के रूप में पूजा होती है।

संसार में कायर पुरुष दूसरों से कहते हैं, 'आगे बढ़े चलो।' वीर कहते हैं, पीछे हटे चलो, कायर कहते हैं, उठाओ तलवार, वीर कहते हैं सिर आगे करो।

दिल्ली में विदेशी सरकार के विरोध में जलूस निकल रहा था। लाखों नर-नारी उसमें सम्मिलित थे। आज दिल्ली के इतिहास में नादिरशाह के इतिहास की पुनरावृत्ति की आशंका है। एक ओर अहिंसा के मार्ग पर चलने वाली दिल्ली की निहत्थी जनता और दूसरी ओर जिसके राज्य में सूर्य कभी नहीं छिपता, उसके घातक शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक ? एक के पास नैतिक बल है, ईश्वर विश्वास हैं और बलिदान तथा अपने उद्देश्य को पूरा करने की आगे बढ़ने की अभिलाषा है तथा दूसरी ओर शस्त्रों की शक्ति, दूसरे को पराधीन रखने का संकल्प, मारने की भावना और ब्रिटिश साम्राज्य तथा अधिकारियों का विश्वास। जलूस जा राह है रास्ते में शस्त्र सज्जित गोरों की सेना सामने आ खड़ी हुई। उसने जलूस भंग करने का आदेश दिया। पर यह क्या ? ऊंचे कद का संन्यासी, जिसके चेहरे पर दिव्य आभा झलक रही थी, कहां से आ टपका। उसने दूसरों को पीछे हटाया और अपनी छाती सासने करते हुए कहा, 'इन लोगो को बाद में गोली मारना, पहले मुझे मारो, जलूस आगे बढ़ेगा—जब तक खून की एक बूंद रहेगी, हम पीछे नहीं हटेंगे। छाती खोलकर आगे बढ़ा। इतिहास साक्षी है, चादनी चौक की गलियां गवाह हैं। संगीनें झुक गयीं। जलूस शान से दिल्ली में निकला। दिल्ली की जनता ने स्वामी श्रद्धानन्द की जय-जयकार की।

कर्मवीरो, याद रखो, संसार में सुस्त और निकम्मे आदमी कभी किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकते। जो लोग ढीले ढाले और आलसी होते हैं। संसार की सभी सम्पत्तियां, ऐश्वर्य और विजय उन्हीं को प्राप्त

होती है, जो प्रत्येक कर्त्तव्य कर्म को जागरूकता, उत्साह और सफलता की आशा से करते हैं। इसलिए तुम्हें सदा खेल-कूद, पढ़ाई-लिखाई और काम-काज में सदा आगे रहने, सतर्क रहने और विजयी बनने की भावना रखनी चाहिए। तभी तुम्हें यश, सम्मान और विजय मिलेगी, स्वामी विदेह ने ठीक ही कहा है—

प्रथम रहे सो धन पावे। प्रथम रहे सो नाम कमावे।

क्रोध त्याग

मा क्रुधः। (अथर्व ११।२।२०) क्रोध मतस्

क्रोध एक ऐसा भाव है, जो उत्पन्न होते ही मनुष्य के सौमनस्य को नष्ट कर देता है, उसे दुख की स्थिति में ले जाता है। दूसरे के अनिष्ट की भावना क्रोध में अन्तर्हित रहती है और जिस हृदय में यह उत्पन्न होता है उसे भी जलाता है। अतः भाव आत्म पीड़ाजनक है।

क्रोध क्यों उत्पन्न होता है? मनुष्य क्यों क्रोध करते हैं? अतृप्त कामना से क्रोध उत्पन्न होता है। काम से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध के कारण व्यक्ति एक दूसरे से लड़ते हैं, झगड़ते हैं, कठोर वाणी से एक दूसरे को वेधते हैं, कामना के कारण ही वर्गसंघर्ष है, राष्ट्रों का संघर्ष है। शम के अभ्यास से इसके वेग को घटाया जा सकता है।

एक बार की बात है कि भगवान् बुद्ध का तिष्य नामक एक शिष्य था। वह उनके पास आया और बहुत ही उदास तथा बेमन भाव से बैठ गया। भगवान् बुद्ध ने पूछा, 'वत्स तिष्य! तू उदास और बेमन क्यों है?' तिष्य ने कहा, 'भन्ते! मेरे साथी भिक्षु मुझसे कड़ी वाणी बोलते हैं, मेरे साथ ठीक व्यवहार नहीं करते।'

'भगवान् को मालूम था कि तिष्य की वाणी भी बहुत कठोर है। उसमें भी विष है। बुद्ध ने कहा, 'तेरे साथी भिक्षु तुझे पीड़ित करते हैं। इसका कारण यह है कि तेरे जीभ है और तू दूसरों की जीभ को सहन नहीं

कर सकता। तेरे लिए यह उचित नहीं है कि तू स्वयं तेज जबान रखे और दूसरों की तेज जबान को सहन न करे। जिस किसी की तेरे समान जीभ हो, उसे दूसरे की जीभ को सहन करने को तैयार रहना चाहिए। तिष्य ! रोष मत कर। तेरे लिए विनम्रता श्रेष्ठ है। क्रोध को रोकना श्रेष्ठ है। इसी के लिए साधना का जीवन बिताना पड़ता है।'

क्रोध को वश में करने के लिए प्रयत्नपूर्वक विचार करना होगा। कड़ी से कड़ी परिस्थिति में अपने को रोकना पड़ेगा। स्वामी श्रद्धानन्द कहा करते थे, 'लोग हम पर झूठे अपवाद लगा सकते हैं। हम पर मिथ्या अभियोग चला सकते हैं, हमारी झूठी निन्दा कर सकते हैं। प्रयत्न करना चाहिए। मैं अपने चित्त में कभी दूसरे के प्रति विकार न आने दूंगा। मैं कभी किसी के प्रति दुर्वचन मुंह से नहीं निकालूंगा। मैं सबके साथ आत्मीयता, विश्व के प्रति मैत्री, दीन-दुखियों के प्रति करुणा और नासमझों के प्रति उपेक्षा का भाव बनाये रखूंगा। मैत्री भाव से हितानुकम्पी होकर विचरूंगा। मैं सम्पूर्ण विश्व को मैत्री पूर्ण चित्त से इतना आप्लावित करूंगा, जिसका कोई परिमाण नहीं।' स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन इसका एक उदाहरण है।

बुद्ध भगवान् का एक शिष्य भिक्षु पूर्ण सूरत के आस-पास के प्रदेश सूनापरांत में धर्म-प्रचारार्थ जाने के लिए आज्ञा मागने आया। दोनों में इस प्रकार बात-चीत हुई, 'भन्ते ! सूनापरांत नामक एक जनपद है। मैं वहां विहार करूंगा।'

'पूर्ण ! सूनापरान्त के मनुष्य क्रोधी, कठोर हैं, वे तुझे कुवाच्य कहेंगे तो तू क्या करेगा ?'

'भन्ते ! मैं सोचूंगा कि वहां के मनुष्य भद्र हैं कि वे मुझे हाथ से नहीं मारते।'

'यदि हाथ से मारें तो ?'

'सोचूंगा कि वे भद्र हैं डण्डे से प्रहार नहीं करते ?'

'यदि डण्डे से प्रहार करें तो ?'

'फिर भी सोचूंगा कि वे भद्र पुरुष हैं, शस्त्र से नहीं मारते, शस्त्र से मेरे प्राण नहीं ले लेते।'

'यदि तुझे तीक्ष्ण शस्त्र से मार डालें ?'

'भन्ते ! मैं सोचूंगा। तुच्छ जीवन की समाप्ति के लिए मुझे शस्त्र हारक (शस्त्र से मारने वाला) बिना खोजे ही मिल गया।'

'साधु पूर्ण ! साधु पूर्ण। इस प्रकार शम से युक्त होकर तू सूनापरांत जनपद में वास कर सकता है। तू जैसा उचित समझे कर।'

इस प्रकार की साधना क्रोध और द्वेष का शमन कर सकती है।

धन कमाओ-खूब खाओ

सप्त मर्यादाओं में धन कमाने की पूरी छूट दी गई है। राष्ट्र के कर्णधार उदारचेता मनुष्यों ने धन और परिग्रह के प्रति अद्भुत अलिप्सा की भावना का प्रचार किया है। वेद के अनेक मन्त्रों में धन कमाने की प्रेरणा दी गई है। जहां धन कमाने की प्रेरणा है वहां उत्कृष्ट त्याग-भावना और अकिंचनत्व की महिमा देखकर आधुनिक समाजवाद की नूतनता समाप्त हो जाती है। वैभव के प्रति उनका अनुभूत दृष्किोण है —

ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रात्यमन्यमुपतिष्ठन्ति रायः। ऋ. १०।११७।५ (रायः) धन-सम्पत्ति रथ के पहियों की तरह आवर्तित होने वाली है। कभी एक के पास रहती है, कभी दूसरे के। ऋग्वेद ३।११।३ में कहा गया है—

अर्थं ह्यस्य तरणि।

अर्थात् धन ही इस संसार-सागर से पार करने वाली नौका है। प्रार्थना मन्त्र में कह गया है—

वयं स्याम पतयो रयीणाम्।

हम धनैश्वर्यों के स्वामी होवें।

'अग्ने नय सुपथा राये'

हे प्रकाशस्वरूप भगवान् हमें उत्तम मार्ग से धन प्राप्ति की ओर चल।

जीवन में धन का बड़ा महत्त्व है। धन के बिना मनुष्य का जीवन व्यर्थ है। धनहीन व्यक्ति संसार में कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता।

ऋग्वेद ४।३२।२० मूल में इन्द्र से प्रार्थना की गई है—

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्याभर। भूरि घेदिन्द्र दित्ससि।

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र! तू बहुत अधिक ऐश्वर्यों को देने वाला है, हमें भी ऐश्वर्य प्रदान कर। याद रख थोड़ा मत देना, सब देना, हमें खूब देना। तू तो हमको बहुत अधिक देने वाला है और तू बहुत अधिक देना चाहता है। जानते हो, हमें कितना धन चाहिए—

यदिन्द्र यावतस्त्व मेतावदह मीशीय। सा०-३१०

हे सकल ऐश्वर्यों के भण्डार प्रभो! जितने एश्वर्य का तू स्वामी हैं; मैं भी उतने धन का स्वामी बनूं?

चाणक्य ने कहा है—

दारिद्रयं खलु पुरुषस्य जीवितं-मरणं।

दरिद्रता मनुष्य के लिए जीवित मरण के समान है। अथर्व वेद में धन के लिए अनेक मन्त्र आए हैं। तीसरे काण्ड का एक मन्त्र है—

येन धनेन प्रपयं चरामि धनेनदेवा धनमिच्छमान: (३।१५।६)

हे प्रभो! जिस धन से मैं और धन कमाने की इच्छा करता हूं, वह लगातार बढ़ता जाए, कभी कम न हो। वेद धन को समाप्त करने, उसे मिटा देने, उसे कम करने और उससे घृणा करने को उपदेश नहीं देता अपितु उसे निरन्तर बढ़ाने का उपदेश देता है। उपर के मन्त्र के दूसरे भाग में कहा है—

तस्मिन् म इन्द्रो रचिमा दधातु प्रजापति: सविता सोमो अग्नि:।

हे प्रभो! ऐसी कृपा करो कि इन्द्र, प्रजापति, सविता, सोम और अग्नि मेरी इस इच्छा को पूर्ण करने में मेरी सहायता करें।

धन कैसे प्राप्त करें। ऋग्वेद १।१।६ मन्त्र से स्पष्ट रूप से कहा गया है—

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम्।

हम अपने अग्निना—पुरुषार्थ के द्वारा ऐसे धन का अर्जन करें जो प्रतिदिन हमारे पोषक का कारण हो, हमें यश प्रदान करने वाला हो और पराक्रम प्राप्त कराने वाला हो। आज लोग परिश्रम से धन नहीं कमाना चाहते। वे अनुचित साधनों से धन कमाने का प्रयत्न ही नहीं करते अपितु कमाते हैं। अपने ऊंचे-ऊंचे महल बनाते हैं। बैंक बैलेन्स बढ़ाते हैं। इस मन्त्र में कथन है कि परिश्रम कर, प्रभु का अग्नि का ध्यान रखकर धन कमा। हाथ पर हाथ धरकर न बैठें। यह मंत्र बतलाता है—धन कमाओ; धन कमाते समय प्रभु का ध्यान रखो। आत्मा को गिराने वाली रिश्वत-खोरी, ब्लैक मार्केटिंग, मिलावट करके ही धन कमाना है तो मत कमा धन। यह धन तुझे नीचे गिरा देगा। किसी निर्धन का खून चूसकर, किसी भोले-भाले व्यक्ति को असली घी के स्थान पर गाय की चर्बी खिलाकर, किसी अभागे पिता को उसके एक मात्र पुत्र की बीमारी में नकली दवा देकर और निर्दोष बच्चे की हत्या करके धन कमाना है तो मत कमा। वह धन तुझे नष्ट कर देगा। भाई से भाई को लड़ाकर, देश में साम्प्र-दायिकता की आग लगाकर, अन्याय और धोखे से एम. एल. ए. और एम. पी. या मन्त्री बनकर परिवारों में फूट पैदाकर धन मिलता है, उसे ठुकरा दे। यह धन आज नहीं तो कल तुझे सर्वनाश की ओर ले जाएगा। ईश्वर को भुलाकर, आत्मा को गिराकर लाखों करोड़ों रुपये भी मिलते हों तो उन्हें लेने से इनकार कर दे। धन कमाकर आत्मा की हत्या न कर।

अर्थशास्त्र का आधार धर्म पर आधारित होना चाहिए। अछूतों, हरिजनों, भोले-भाले और आदिवासियों को छोड़कर थोड़े लोगों को उन्नत करने वाला अर्थशास्त्र ठीक नहीं। कितनों को मजदूर बनाकर रात-दिन गुलामों की भांति उन्हें कष्ट देकर उनके द्वारा पैदा किए हुए मुफ्त के अनाज से अपने कोठे भरकर धन बनाने वाला जमींदार पापी है। मजदूरों

को दस-दस घण्टे तक बैलों की तरह काम करवाकर उन्हें पेट भरकर भोजन न देने वाला, उनके रहन-सहन की व्यवस्था न करने वाला, उनके बाल-बच्चों की चिंता न करने वाला उन्हें सवेतन छुट्टी न देने वाला कारखानेदार पापी है। इन सबके अर्थशास्त्र अधर्म पर आधारित है। वह न्यायाधीश जो न्याय की कुर्सी पर बैठकर शिकायत करने वाले से केवल मुकदमा सुनने के लिए बीस हजार रुपये की मांग करता है, वह अध्यापक जो सरकार से पूरा वेतन लेकर कक्षाओं में नहीं जाता, विद्यार्थियों के पढ़ाने की चिंता नहीं करता, जो नम्बर बढ़ाने का प्रलोभन देकर विद्यार्थियों से अनुचित धन प्राप्त करता है, अधर्म का धन कमाता है। वह व्यापारी जो लोगों की लाचारी का लाभ उठाकर अधिक दाम वसूल करता है, अनुचित धन कमाता है। इस तरह से कमाया हुआ धन पुष्टि करने वाला नहीं होता, शक्ति देने वाला नहीं होता। अथर्ववेद ७।११५।४ मंत्र में कहा गया है—

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशग् । अ. ७।११।४

अर्थात् मुझे पुण्य द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य या धन मिले। पाप द्वारा प्राप्त लक्ष्मी का मैं नाश कर दूं।

या मा लक्ष्मीः पतयालूर जुष्टाभिचस्कन् वन्दनेव वृथाम् ।
अन्यमास्तम् सवितस्ता भितो ध हिरय्य हस्तोवसुनो रण्यः।
अ० ७।११५।२

अर्थात् जो लक्ष्मी मुझे दुराचार में गिराने वाली है, जो धन निदर्य होकर मुझसे चिपटा हुआ है जैसे अमरवेल वृक्ष पर चिपट जाती है और उसे सुखा डालती है, हे सर्वप्रेरक देव ! नागिन के समान ऐसी लक्ष्मी को मुझसे दूर रख। हे सुवर्णाम् घनों से सम्पन्न ! हमें तू उत्तम धन प्रदान कर।

उपहूता इह गावउपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः।। यजु. ३।४३

हे परमेश्वर ! हमारे घर गाय, बकरी, भेड़ आदि पशुओं से सदा भरे रहें, हमारे घरों में अन्न के ढेर लगे हुए हों।

ऋग्वेद १।१।३ मंत्र में कहा गया है कि हम अग्निना पुरुषार्थ के द्वारा ऐसे धन का अर्जन करें जो प्रतिदिन हमारे पोषण का कारण हो, हमें यश प्रदान करने वाला हो और पराक्रम प्राप्त कराने वाला हो।

इस मन्त्र में धन के विषय में बतलाया है। धन कमा अवश्य परन्तु ईश्वर के साथ। इस प्रकार उपार्जन कर कि तेरा आत्मा ऊपर उठे, नीचे न गिरे। यदि आत्मा का पतन होता है, यदि रिश्वतखोरी ब्लैक मार्केटिंग, मिलावट करके धन कमाता है तो मत कमा। यह धन तुझे नीचे गिरा देगा।किसी निर्धन का खून चूसकर, किसी भोले-भाले व्यक्ति को असली घी के स्थान पर डालडा खिलाकर, किसी अभागे पिता को उसके पुत्र की बीमारी में नकली दवा देकर और निर्दोष बच्चे की हत्या करके धन कमाना है तो ऐसे धन को ठुकरा दे।

यह मन्त्र कहता है कि धन कमा अवश्य पर दूसरी बात ध्यान रखना कि वह पुष्टि देने वाला हो, शक्ति देने वाला हो। ऐसा धन मत कमा जो हर समय तेरे लिए संकट ही बना रहे।

मन्त्र तीसरी बात यह बतलाता है कि ऐसा धन कमा जो यश और कीर्ति देने वाला हो।

और फिर अंतिम बात मन्त्र बतलाता है जो धन वीर लोगों को हमारे पास लाने वाला हो वह कमा। पुरुषार्थ द्वारा अर्जित धन हमारे जीवनों में वीरता का संचार करेगा वहाँ उस सात्विक धन का सेवन करके हमारे बच्चे भी शक्तिशाली होंगे। वेद बहुत ही अद्‌भुत पुस्तक है। दूसरी विशेषता इसमें पूर्णता का होना है। ऋ० २।२१।६ मन्त्र बतलाता है कि धन कौन-कौन से हैं—

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि नो धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्।

हे इन्द्र हमें श्रेष्ठ धन प्रदान कीजिए। क्या है वह श्रेष्ठ धन? चित्त का उत्साह, उत्तम सौभाग्य, धन-धान्य की समृद्धि, शरीर की निरोगता वाणी का माधुर्य और दिनों का सुदिनत्व। आइए, हम ऐश्वर्य और धन कमायें।

वेद ने जहां धन कमाने का आदेश दिया है वहां पर यह भी लिखा है—'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। यजु. ४०।१

किसी के धन पर मत ललचाओ। वेद कहता है जो स्वार्थी है। उसका अन्न उपजाना और धन कमाना व्यर्थ है। इस प्रकार का स्वार्थपूर्ण धन उसका संहार कर देता है।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि बध इत् स तस्य। इस ऋषि की वात्सल्यपूर्ण, आग्रहपूर्ण, स्वात्मानुभवपूर्ण वाणी देखिए, वह कहता—

'सत्यं ब्रवीमि बध इत् स तस्य' मैं सच कहता हूं, इस प्रकार का स्वार्थपूर्ण उत्पादन स्वयं उत्पादक का बध करा देता है।

नार्यमण पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।

ऋ० १०।११७।६

जो धन को न धर्म में लगाता है, न अपने मित्र को देता है, जो 'केवलादी' अपना ही पेट पालने वाला है वह 'केवलाघ'—साक्षात् पापमय है। इसीलिए वेद ने कमंठ पुरुषों के आगे आदर्श रखा था।

'शतहस्त समाहर सहस्र हस्त विकिर'

अथर्व. ३।२४।५

सैकड़ों हाथों से इकट्ठा करो और हजारों हाथों से बांट दो।

संक्षेप में अथर्ववेद के ऋषि ने यहां तक व्यवस्था की है—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः सामने योक्त्रे, सह वो युनज्मि।

अ. ५।१९.६

तुम लोगों का पानी समान हों, तुम्हारा अन्न समान हो, तुम सबको समान बंधन में बांधता हूं। तुम एक दूसरे के साथ सम्बधिन्त रहो।

धर्म के विषय में यह पढ़कर सहज प्रश्न उत्पन्न होता है, कौन-सा समाजवाद या साम्यवाद ऐसा होगा, जो सिद्धान्त रूप में इससे आगे जाएगा ?

धन कमाइए। वितरण करो और धर्म से कमाओ। मनु महाराज लिखते हैं—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति॥

मनु. ४।१७४

अधर्म से, अन्यायाचरण से आरम्भ में मनुष्य खूब उन्नति करता है, नाना प्रकार की सुविधायें देखता है। इतना ही नहीं, वह शत्रुओं को भी जीत लेता है, परन्तु अन्त में यह मूल सहित नष्ट हो जाता है। वृद्ध चाणक्य ने कहा है—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति,
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥

चा. नीति १५।६

अन्याय से अर्जित धन दश वर्ष तक रहता है, ग्यारहवें वर्ष में मूल सहित समाप्त हो जाता है। इसलिए वेद के शब्दों में हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं—

अग्ने नय सुपथा राये

हे प्रभु, हम उत्तम मार्ग पर चलते हुए ऐश्वर्यों को प्राप्त करें।

अन्धविश्वासों को दूर करो

ऋतस्य पथा प्रेत (यजुर्वेद ७।४५) सत्य के पथ पर चलो।
अहमनृतात्सत्यमुपैमि (यजुर्वेद १।५)
मैं असत्य से बचकर सत्य के पास जाता हूं।
ऋतं वोचे नमसा (ऋ० ४।५।११)

मैं नमस्कार के साथ, शिष्टतापूर्वक, विनयपूर्वक, नम्रतापूर्वक, शालीनता के साथ (ऋतं) सत्य (वोचे) बोलता हूं।

युवको, सत्यवादी बनो, सत्य से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं। सत्य बोलना ही धर्म नहीं। मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का आचरण करना चाहिए। सत्य के लिए बुद्धि या तर्क की भी बड़ी आवश्यकता है। तुम स्वयं सत्य बोल सकते हो पर बुद्धि द्वारा सत्य और असत्य को पहचान करके सत्य के अनुसार चलना और आचरण करना भी जीवन की सफलता के लिए आवश्यक कर्म है। जीवनके प्रत्येक कार्य में, प्रत्येक क्षण बुद्धि का उपयोग किया जाना चाहिए, पर हम बुद्धि से काम कहीं-कहीं हो लेते हैं। बुद्धि ईश्वर प्रदत्त आत्मा का दीपक है। इस दीपक के प्रकाश को धुंधला न होने देना, न इस प्रकाश की परिधि से दूर जाएं। बुद्धि द्वारा सत्य की दीप्ति फैलाओ। अन्यथा बुद्धि के बिना सत्य अन्धविश्वास बन जाएगा। हमेशा बुद्धि सम्मत कार्य करे। नाक कटे सम्प्रदाय की कहानी सत्यार्थ प्रकाश में तुमने अवश्य पढ़ी होगी। सुनो—

कोई आदमी चोरी करता पकड़ा गया। न्यायाधीश ने उसे नाक काटने का दण्ड दिया। जब उसकी नाक काटी गई, तब वह धूर्त्त नाचने, गाने और हँसने लगा। लोगों ने पूछा कि तू क्यों हँसता है? उसने कहा कि कुछ कहने की बात नहीं है। लोगों ने कहा, क्यों, क्या बात है? उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं। मैं देखकर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता, गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूं कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूं। लोगों ने कहा, हमको दर्शन क्यों नहीं होता? वह बोला नाक की आड़ हो रही है, जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखें, नहीं तो नहीं। उनमें से किसी मूर्ख ने नांक तो कट जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिए। उसने कहा कि मेरी भी नाक काटो और नारायण दिखलाओ। उसने उसकी नाक काटकर कहा कि तुम भी ऐसा ही करो, अन्यथा लोग तुम्हारा उपहास करेंगे। तब तो वह भी उसी के समान नाचने, कूदने लगा। वैसे ही एक के बाद दूसरे नाक

कटवाते गए, और हंसी के भय से नाचने कूदने लगे। धीरे-धीरे उनकी संख्या हजारों की हो गई, और उन्होंने अपने सम्प्रदाय का नाम रखा, 'नारायणदर्शी'। जब वहां के राजा ने यह सुना तो उसने भी उनमें से मुखिया को बुलाकर बोला, यदि तुम्हें दीखता है, तो हमें क्यों नहीं दीखता। नारायण दर्शी ने कहा, 'जब तक नाक है, तब तक वह नाक की ओट में होने से नहीं दीखेगा। जब नाक कटवा लोगे तो वह दिखाई देने लगेगा। राजा भी उनके चक्कर में आ गया। उसने ज्योतिषी को बुलवाया। मुहूर्त निकाला गया। ज्योतिषी नेभी बतलाया महाराज दशमी के दिन प्रातः आठ बजे नाक कटवाने का मुहूर्त है। धन्य थे ज्योतिषी जी महाराज भी कि उनके पन्ने में नाक कटवाने का भी मुहूर्त निकल आया।

यह सब बातें एक वृद्ध दीवान को ठीक न लगी। उस वृद्ध ने वर्तमान दीवान से कहा कि वे धूर्त हैं। तू मुझको राजा के पास ले चल। वहां जाकर उसने राजा से कहा, 'सुनिए महाराज! ऐसी शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। तर्क और बुद्धि से सोचे बिना, सत्य और असत्य की पहचान किए बिना कार्य करने से हानि होती है, बाद में पश्चाताप होता है। राजा ने कहा, 'क्या ये हजारों मनुष्य झूठ बोल रहे हैं ? दीवान ने कहा बुद्धि से परीक्षा के बिना सत्य और असत्य की पहचान नहीं हो सकती ? इसलिए मैं वृद्ध हूं घर बैठा रहता हूं और थोड़े दिन जीऊंगा भी। इसीलिए प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊं ? तत्पश्चात जैसा उचित समझें वैसा कीजिएगा। राजा ने इसे स्वीकार किया, और उनके कहने से दो हजार सैनिक उनके साथ कर दिये। राजा, दीवान, सब कर्मचारी और सैनिक यथास्थान पहुंचे। उनको देखकर सब नाचने कूदने लगे। उनके महन्त जिसने सम्प्रदाय चलाया था, जिसकी प्रथम नाक कटी थी, उसको बुलाकर कहा कि आज हमारे दीवान जी को नारायण का दर्शन कराओ। उसने कहा अच्छा और यथासमय पैना चाकू ले नाक काट थाली में डाल दी, दीवान जी की नाक से रुधिर की धार छूटने लगी। दीवानजी का मुख मलिन हो गया। फिर उस धूर्त ने मन्त्रोपदेश किया कि महराज! अब नाक कटी हुई

वापस तो नहीं आएगी। जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हार बड़ा ठठ्ठा होगा, सब लोग हँसी करेंगे। वह इतना कह अलग हुआ, और दीवनजी अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा लिया। जब दीवानजी से राजा ने पूछा कहिए, नारायण दीखता है, या नहीं? दीवानजी ने राजा के कान में कहा कि कुछ भी नहीं दीखता। वृथा इस धूर्त ने सहस्रों मनुयों को भ्रष्ट किया।

दीवान ने कहा इनको पकड़कर कठिन दण्ड देना चाहिए। उन सबको आजीवन कैद की सजा दी तथा उनके महन्त को गधे पर चढ़ा बड़ी दुर्दशा के साथ मारा। उस समय इन बातों को सोचकर वे नकटे घबराये और भागने की तैयारी करने लगे। परन्तु चारों और फौज ने घेर रखा था। राजा ने आज्ञा दी कि सबको पकड़ बेड़ियां डाल दो, और इस दुष्ट का काला मुख कर गधे पर चढ़ा, इसके गले में फटे जूतों का हार पहना सर्वत्र घुमा, लोगों से धूल, राख डलवा, जूतों से पिटवा, कुत्तों से नुचवा मरवा डाला जाए। जिससे कि दूसरे भी ऐसा काम न करें।

बालको, सुनी तुमने नकटों की कहानी। हमारा देश अन्धविश्वासों और चमत्कारों में विश्वास रखता है। आजकल इस देश में अन्धविश्वास बुरी तरह फैल रहे हैं। संतोषी माता के नाम पर पूजाएं चल रहीं हैं और बडे-बड़े शिक्षित लोग भी उससे अपनी मनोकामना पूरी करने की आशा कर रहे हैं। जयगुरुदेव के सम्प्रदाय की धूम मची हुई है। बाल योगेश्वर का जाल विदेशों में भी फैल रहा है? आनन्दमार्गियों के रूप में एक नई राजनैतिक विचारधारा का निर्माण भी चमत्कार के नाम पर चल रहा है। सांई बाबा के नाम पर जादू दिखाये जा रहे हैं। इन सब में क्या सत्य है, और क्या असत्य है, यह सोचने की आवश्यकता कोई अनुभव नहीं करता है। यह सब असत्य मार्ग हैं। सबकी नकटों की सी दशा हो रही है। एक फंसता है, दूसरे को फंसाता हैं। ऐसों के लिए वेद कहता है, 'ऋतस्य पथाप्रेत' सत्य के मार्ग पर चलो। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु इन असत्य मार्गों से हटाकर हमें सत्य के मार्ग से ले चलो।

बालको, चीन में एक सन्त कन्फ्युशियस हुए हैं। बड़े महान विचारक

थे। इन्होंने उत्तम पुरुष कौन है बताते हुए लिखा है वह कि जो अपनी असफलता के लिए दूसरे को दोषी ठहराता, न वह अपने काम में असफल होने वालों की हँसी उड़ाता है।

वह कि जो किसी को अपने अन्धविश्वासों की कसौटी पर नहीं कसता, न अपने बने हुए विचारों के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के काम का मूल्यांकन वह उसके गुणों के अनुसार करता है।

वह कि जो हमेशा शान्त और गम्भीर रहता है। निम्न पुरुष चिन्तित।

वह कि जो अपनी योग्यता को अपना धन समझता है, निम्न पुरुष के प्राण धन में बसते हैं।

वह कि जो सत्य को समझने की कोशिश करता है। निम्न मनुष्य काम निकालने की फिकर में रहता है।

इसलिए मैं तुम्हें कहूंगा—'ऋतं वोचे नयसा' वेद की इस सूक्ति को मत भूलना। सत्य बोलो, परन्तु नम्रता के साथ बोलो, सत्याचरण और व्यवहार करो परन्तु कटुता को न आने दो, नम्रता के साथ सत्य बोलो, समादरपूर्वक बोलो, शिष्टता और शालीनता के साथ बोलो, हितकारक और पथ्य शब्दों में बोलो। स्वामी विदेह के शब्दों में याद रखो—

बोलो सादर सच्ची बात। मीठी प्यारी अच्छी बात॥

एनो मा नि गाम्। ऋ० १०।१२८।४

मैं पाप में न फसूँ।

ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः। ऋ. ९।७३।६

दुष्कर्मी मनुष्य सत्य के मार्ग को पार नहीं कर पाते।

बालको, पाप का फल अवश्य भोगना पड़ता है। अनेक सम्प्रदाय ऐसे हैं जो अपनी ओर लोगों को आकृष्ट करने के लिए पापों को नष्ट करने और धुल जाने की बात करते हैं। हिंदू धर्म में तीर्थयात्रा, गंगा स्नान आदि करने से पापों के धुल जाने की बात मानी जाती है। मान लो कि हम

जीवन भर भ्रष्टाचार, चोरी, डकैती, मिथ्या भाषण, व्यभिचार आदि दुष्कर्मों में लगे रहें, और अन्त में तीर्थयात्रा या गंगा स्नान कर लें, तो पापों से मुक्त हो जायेंगे, ऐसा माना जाता है। इसी प्रकार मुसलमान भी पापों से छुटकारा पाने के लिए हज्ज आदि करते हैं। ईसाइयों में पोप खुलेआम पापों से मुक्त होने के लिए टिकट बेचता था। इसी प्रकार बहुत से धार्मिक लोग इसी प्रकार की विचारधारा रखते हैं। पर वैदिक धर्म या आर्य-समाज का मत है, कि मनुष्य जो भी कार्य करेगा, उसका फलउसे अवश्य भोगना पड़ेगा। "अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम्" यह गीता का वाक्य है। अर्थात् हमें शुभ या अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भुगतना पड़ेगा। वह फल चाहे तत्काल, मिले, कुछ समय बाद मिले, इस जन्म में मिले या फिर उस जन्म में मिले।

एक घटना कहीं पढ़ी थी। कुछ समय पूर्व एक छोटे से रेलवे स्टेशन पर एक स्टेशन मास्टर रहते थे। वहां केवल एक ही कमरा था। वही कमरा स्टेशन मास्टर का कार्यालय, पार्सल और बुकिंग आफिस सब कुछ था। वहां वेटिंग रूम और वेटिंग हाल भी नहीं था। चारों ओर खुला और प्रकाश विहीन स्टेशन।

शाम की ट्रेन से एक नवयुवक वहां उतरा। ट्रेन के जाने के बाद उसने स्टेशन मास्टर के पास जाकर कहा, महाशयजी, अन्धकार घिर आया है, मुझे यहां से दस-बारह मील दूर एक गांव में जाना है। मैं नितान्त अकेला हूं। कैसे जा सकूंगा? स्टेशन मास्टर ने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए उसे अपने यहां रहने देने से इन्कार कर दिया। युवक ने कहा "मैं कहीं भी जाने में सर्वथा असमर्थ हूं—आप कुछ तो प्रबन्ध कीजिए।"

युवक को स्टेशन मास्टर ने सुनसान शेड के नीचे सोने को कहा। वास्तव में उन दिनों वहां चोरियां बहुत होती थीं, अतः वह बार-बार उनसे सुरक्षित स्थान देने की मांग करता रहा। पर जब वे किसी तरह राजी न हुए तो उसने स्पष्ट कहा, "मेरे पास इस समय आठ-दस हजार रुपये हैं, मुझे अकेले डर लगता है। मैं अकेला इतनी दूर किसी भी अवस्था में नहीं

जा सकता और न यहां सुनसान एवं अन्धेरे शेड में सो ही सकता हूं।"

रुपये का नाम सुनते ही स्टेशन मास्टर के मन की राक्षसी भावनाएं जागृत हो गईं, और तुरन्त पोर्टर के साथ उस युवक को अपने घर भिजवाया और उसके सोने का प्रबन्ध बाहर बरामदे में हो गया। उसका प्रबन्ध करने के बाद पोर्टर लौट आया। अब स्टेशनमास्टर ने उस पोर्टर से मिलकर उसका रुपया लेने के लिए योजना बनाई। पहले तो पोर्टर ने इन्कार कर दिया फिर समझाने बुझाने पर और रुपयों के लोभ में आकर वह सहमत हो गया। अब पूरा इन्तजाम किया गया। पहले एकदम सुनसान जगह पर झाड़ियों के बीच एक लम्बा और गहरा गड्ढा तैयार किया, फिर एक तेज हथियार लाया गया। और रात को स्टेशनमास्टर ने उस तेज हथियार से उस सोते हुए नवयुवक की गर्दन उड़ा दी। उसने चूं तक नहीं किया। उस युवक को मारने बाद उन दोनों ने उसकी पूरी तरह तलाशी ली। पर उन्हें एक पैसा तक न मिला। लाचार होकर उसे कपड़े में उठाया और पहले से तैयार गड्ढे में दफना दिया। उसके बाद निश्चिन्त होकर अपना काम करने चले गये।

दूसरी ओर यह हुआ कि जब वह नवयुवक आराम कर रहा था, स्टेशनमास्टर का पुत्र वहां आया। उसने उस नवयुवक से बात-चीत की प्रभावित हुआ। उस दिन उसका परिवार भी घर पर न था। अतः उसने अपने इस नये परिचित व्यक्ति को भला आदमी समझकर अन्दर सुला दिया, और स्वयं बाहर चारपाई पर सो गया। स्टेशन मास्टर और पोर्टर घबराहट तथा चिन्ता में उसी की हत्या की और देखा भी नहीं कि वह कौन है ? उन्हे तो चिन्ता न थी। अतः अगले दिन प्रातःकाल हाथ मुख धोने के बाद जब वह युवक स्टेशनमास्टर के सामने आकर उनका धन्यवाद करने और आने वाली गाड़ी पर चढ़ने की तैयार से पहले नमस्कार करने आया तो स्टेशनमास्टर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी।। पसीने से लथपथ हो उठा, सारा शरीर और पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई। नवयुवक की गाड़ी तैयार थी। स्टेशनमास्टर ने उससे पूछा 'कहां से आ रहे हो ?' रात में कहां सोए थे ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर सुन कर तथा

घर के अन्दर सोने की बात कहकर वह नवयुवक गाड़ी पर चढ़कर चला गया। दूसरी ओर स्टेशनमास्टर इस घटना से चकित हो गया। वास्तविकता समझ नहीं पाया।

गाड़ी जाने केबाद जब घर पहुंचा तो उसे पता लगा कि बाहर सोने वाला व्यक्ति उसका अपना इकलौता पुत्र था। पर, अब क्या हो सकता था। स्टेशन मास्टर ने लोभ से अन्धा होकर स्वयं अपने ही हाथों अपने पुत्र की हत्या कर दी थी। करनी का फल उसे मिल चुका था। कहना न होगा, स्टेशनमास्टर को उस नवयुवक से यह भी ज्ञात हो चुका था कि वह नवयुवक भी अपने माता-पिता का इकलौता बेटा है। काम से जा रहा है। उसके बाद हत्या के अपराध में स्टेशनमास्टर और पोर्टर फँसे, उनका रुपया नष्ट हुआ। स्टेशनमास्टर को फांसी और पोर्टर की लम्बी कैद की सजा हुई। सचमुच 'जो जस करहि सो तस फल चाखा' लोकोक्ति सत्य हुई।

बालको! जीवन में दूसरों को कष्ट देने के लिए, सताने के लिए दूसरों का धन हड़पने के लिए किसी को व्यर्थ में मुसीबत में फँसाने की कभी कोशिश मत करना। ईश्वर न्यायी है। वह सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा है। वह सर्वव्याक है। अपराध करके तुम सिपाही, शासक और न्यायधीश से बच सकते हो पर न्यारी का प्रभु के सामने तो करनी का फल भोगना ही पड़ेगा। वहां तुम नहीं बच सकते। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में उसका फल भोगना पड़ेगा।

पूज्य आनन्द स्वामी की महाराज ने 'मानव जीवन गाथा' में कर्मों के फल के विषय में दृष्टांत लिखा है। वह बताना आप्रासंगिक न होगा। सुनो—

एक व्यक्ति का बहुत प्यारा बच्चा था। उसको सांप ने डस लिया। वह मर गया। व्यक्ति बहुत दुखी हुआ। पड़ोस वालों ने सपेरा बुलाकर सांप पकड़वाया और उस आदमी से उसे मारने को कहा।

उस बालक के पिता ने सर्प की ओर देखकर कहा इसे मारने से क्या

मेरा बच्चा जीवित हो जायेगा ? जब बच्चा जीवित नहीं होगा, तो इसे मारने से क्या लाभ ?

सपेरा उस सांप को ले गया और पत्थर से उसका सिर कुचलने लगा तो सांप बोला, 'मुझे क्यों मारते हो ? मैंने उसे नहीं मारा, उसकी मृत्यु के कहने से मैंने उसे डसा।'

सपेरा मृत्यु के पास गया बोला, 'मैं तुझे दण्ड दूंगा, तुमने उस बच्चे को मारने के लिए सर्प को क्यों कहा ?'

मृत्यु ने कहा, 'मैं क्या करूं, उसका समय आ गया था।'

सपेरा समय के पास पहुंचा और उससे पूछा कि तुमने क्यों ऐसा किया? समय बोला, 'तुम समझ नहीं सकते। इसके कर्मों का फल यही था। कर्म के फल को कोई नहीं रोक सकता।'

सपेरा कर्म के पास पहुंचा और उससे भी पूछा कि तुमने क्यों उस बच्चे की हत्या करवाई।

कर्म ने कहा 'मुझसे क्यों पूछते हो, मरने वाले से पूछो। मैं तो जड़ हूं। 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' कर्म करने वाला व्यक्ति चेतन होता है। चेतन स्वतंत्र होता है।'

सपेरा बच्चे की आत्मा के पास पहुंचा और उससे उस प्रश्न का उत्तर मांगा।वह बोला 'ये सब लोग ठीक कहते हैं। मैंने ही वैसा कर्म किया था जिसका फल इस रूप में मुझे भुगतना पड़ा।'

हमारा कहने का तात्पर्य यह है कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र और फल पाने में परतन्त्र है। अतः उसे अच्छे से अच्छे कर्म करने चाहिए। एक और दृष्टान्त देकर मैं आज की बात बन्द करूंगा।

बालको, अकबर और बीरबल के नाम से जो किस्से प्रसिद्ध हैं वह रोचकता के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी हैं। बीरबल के प्रत्युत्पन्न मतित्व से दरबारी चिढ़ते थे। अकबर भी विचित्र-विचित्र प्रश्न लाकर और उनके

उत्तर वीरवल से दिलवाकर उसकी श्रेष्ठता उन्हें बताते रहते थे। एक दि भरे दरवार में अकवर ने कहा, 'मुझे तीन चीजें चाहिए। एक अवका दूसरा तवका और तीसरा अवका न तवका।' वीरवल की ओर जब बादशाह ने देखा तो उन्होंने दरवारियों से वह लाने को कहा। दरवारियों ने सोचा कि रुपया होने पर क्या नहीं मिल सकता? निकल पड़े वह तीनों वस्तुएं लाने। उन्होंने देश विदेश छान मारा, पर वह न मिला। उन्होंने आकर असमर्थता वादशाह के सामने कही बादशाह मुस्कराकर वीरवल से वोले 'वीरवल, क्या तुम यह वस्तुएं ला दोगे?' वीरवल ने कहा महाराज, यह लाना कठिन नहीं है। पर उसमें धन और समय लगेगा।' बादशाह ने धन दिया और एक निश्चित अवधि के बाद लाने का समय दिया।

वीरवल घर गया। धन मिला ही था। परिवार सहित आराम किया और तीन व्यक्तियों को लेकर निश्चित समय पर दरवार में पहुंच गया। बादशाह ने वीरवल को देखते ही पूछा 'वीरवल, ले आये तीनों वस्तुएं—अवका, तवका और अवका न तवका।' उसने कहा, 'महाराज ले आया हूं, बाहर हैं।' बादशाह ने सवके सामने लाने का आदेश दिया। वीरवल वाहर गया और एक वड़े समृद्ध और स्वस्थ सुखी सेठ, एक साधु तपस्वी और वेश्या को लाकर वहाँ खड़ा कर दिया। वादशाह ने पूछा 'यह कैसे?'

वीरवल ने सेठ जी की ओर इशारा करके कहा 'ये हैं तवके। इन्होंने तव अर्थात् पहले जन्म में अच्छे कर्म किए थे इसलिए इस जन्म में सुखी हैं, स्वस्थ्य हैं, धन है दौलत है, ज्ञान है। सभी साधन सुलभ हैं।' उनके बाद साधु तपस्वी को बुलाकर वताया कि 'यह महाराज! अवके हैं—अब अच्छे काम कर रहे हैं अत: इनको उस जन्म में इसका अच्छा फल मिलेगा।' वादशाह ने पूछा 'यह दोनों तो ठीक रहे। पर यह जो वेश्या है, यह कैसे न अवकी है न तवकी।' वीरवल हँसे और मुस्काराते हुए बोले 'महाराज! इसने तब अर्थात् उस जन्म में अच्छे कर्म किए होते तो यह वेश्या का नारकीय जीवन इसे न भुगतना पड़ता। और यह जन्म पाने के बाद भी

अभी तक यह समझी नहीं है और अब भी ऐसे कार्य कर रही है जिनका फल इसे बुरा मिलेगा। इसलिए यह न अबकी है और न तबकी।' बादशाह बीरबल की बात सुनकर प्रभावित हुए।

मैं तुमसे कहूंगा कि बालको, जो बीत गया वह बीत गया। उसका फल तुम्हें भुगतना पड़ेगा, वह कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। पर इस जीवन में अच्छे कार्य करके सत्य, परोपकार, दया आदि के द्वारा अपना जीवन सफल बनाओ। भगवान् तुम्हें उच्च जीवन देंगे। यही कामना है !

शिवाजी और शिला मेंढक

शिवाजी महान् व्यक्ति थे। बुद्धि और चातुर्य में औरंगजेब जैसे शक्तिशाली राजा के उन्होंने छक्के छुड़ा दिए। आज से लगभग ३०० वर्ष पहले शिवाजी ने मुगलों के छक्के छुड़ा दिए थे और 'छत्रपति' कहलाने लगे थे। छत्रपति बनने के बाद प्रजा के पालन-पोषण आदि अपना मुख्य कर्त्तव्य मानने लगे और उनका विचार था। राजा-रञ्जजनात्' जो प्रजाओं को खुश रखे वही वही राजा है। अचानक उनके राज्य में कहीं सूखा और कहीं अतिवृष्टि हो गई और इससे प्रजा अत्यन्त दुःखी हुई। शिवाजी महराज ने एक ओर अन्न वितरण का प्रबन्ध किया और दूसरी ओर सशक्त व्यक्तियों को कार्य देने की भी व्यवस्था की।

मुगलों ने अपने आक्रमण बन्द नहीं किए थे तो वे नए किलों के निर्माण में भी लगे हुए थे। उन्होंने जीर्ण-शीर्ण किलों की मरम्मत भी करवाई। सूखे आदि से पीड़ितों को काम मिला। वे स्वयं भी स्थान-स्थान पर जाकर काम की देख-रेख करते थे।

एक दिन की बात है कि हजारों व्यक्तियों को काम करते हुए देखकर छत्रपति के मन में गर्व समाया कि वे कितनों को भोजन दे रहे हैं। पास में खड़े कुछ लोगों ने उनके इस गर्व को और बढ़ाया। उनकी खुशामद की

बातों ने उनके इस गर्व को और बढ़ाया और वे आनन्द विभोर होने लगे। उनके गुरु समर्थ गुरु रामदास जी महाराज भी अचानक यहां आ उपस्थित हुए। उन्होंने शिवाजी के गर्व का अनुभव किया और खुशामदियों की बातों से बढ़े हुए गर्व को देखा। उन्हें दुःख हुआ कि उनका प्रिय शिष्य गर्व के उन्माद में पड़ गया है।

शिवाजी के कार्यों को देखकर गुरुदेव ने कहा 'शिवा किला तो तूने ठीक कराया है, लेकिन उसका मार्ग तो ऊबड़-खाबड़ है।

शिवाजी ने कहा, 'गुरुदेव, अब किले का मार्ग भी ठीक कराऊंगा।'

गुरुदेव ने कहा 'तो शिवा, यह बड़ी शिला रास्ते को रोक कर बाधा बन रही है, पहले इसके टुकड़े कराकर हटा।'

शिवाजी की आज्ञा से उसको हटाने के लिए उसके टुकड़े किये गये। टुकड़े होने पर देखा गया कि उसमें ऊखल जितना घड़ा था, जिसमें पर्याप्त जल भरा हुआ था और उसमें बड़े आराम से एक मेंढक इधर-उधर आ जा रहा था। शिवाजी को संबोधित करके गुरुदेव ने कहा 'वाह-वाह शिवा! वाह, वाह इस शिला के अन्दर भी तुमने जल रखवाकर इस मेंढक के भोजन, रहन-सहन की व्यवस्था कर रखी है। धन्य हो प्रजापालक! समर्थ गुरुरामदास की इस व्यंग्य भरी वाणी ने उनका गर्व नष्ट कर दिया। उन्हें पता चल गया कि मनुष्य का गर्व कितना मिथ्या और उथला है। वास्तव में हम तो कार्य के निमित्त मात्र हैं। कोई अन्य शक्ति हमारा-सबका पालन-पोषण कर रही है। गुरुजी दूर जा चुके थे।

इस व्यंग्य और उसके बाद वास्तविक स्थिति को सोचकर उन्हें नींद भी ठीक तरह से नहीं आयी। शिवाजी का सम्पूर्ण गर्व दूर हो चुका था। आत्मा शुद्ध और पवित्र हो चुकी थी।

सूर्योदय के पश्चात् प्रतिदिन की भांति जब गुरुदेव मधुकरी के लिए अपना पात्र लेकर शिवाजी के द्वार पर पहुंचे तो शिवाजी ने उनकी झोली में एक कागज का पुर्जा डाल दिया। रामदास जी आश्चर्य से बोले, 'शिवा! तूने अन्न के बदले यह कागज का टुकड़ा ही मुझे क्यों दिया?'

शिवाजी ने बड़ी ही नम्रता से कहा 'गुरुदेव ! मैंने सम्पूर्ण राज्य आपके चरणों में अर्पित कर दिया है, उसी का पुर्जा आपकी झोली में है।'

'लेकिन ऐसा क्यों किया शिवा।'

'गुरुदेव ! मैं व्यर्थ के गर्व से पीड़ित था, उसके कारण बड़ा बेचैन था, यहां तक कि सर्वशक्तिशाली, ऐश्वर्यवान्, विश्वनियन्ता को ही भूल बैठा था। उस पुर्जे ने मेरे गर्व तथा मिथ्याभिमान की जड़ काट डाली है। अब न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।'

कुछ सोचकर गुरुदेव ने कहा 'तो शिवा, मेरी आज्ञा है कि तू अभी राज-काज संभाल। हिंदू धर्म, ब्राह्मण और गौ की रक्षा कर, मेरा आशीष तेरे सिर पर है, सब ठीक होगा।'

'गुरुदेव ! राज्याधिकार से पुनः गर्व मेरे मन में उठे तो ?'

'गर्व क्यों उठेगा ? अब तेरा राज्य ही कहा है ? अब सब मेरा राज्य है। और मेरे राज्य का झंडा भगवा रंग का होगा जैसा कि मेरे परिधान का रंग है, फिर तुझे गर्व का लवलेश भी न छू सकेगा।'

ऐसा कहकर गुरु समर्थ रामदास तीर्थ यात्रा के लिए चल पड़े और शिवाजी उनके प्रतिनिधि बनकर राज्य करते रहे।

स्वर्ग की सार्थकता

'स्वर्ग की सार्थकता' शीर्षक एक बोध कथा कभी पढ़ने के लिए आंखों के सामने आयी थी। इस बोध कथा में बतलाया गया था कि एक बार की बात है किसी ने आकर कुटिया का दरवाजा खटखटाया और पूछा 'कोई है ? मैं यहां आया हूं। आम्र कुंजों के मध्य बनी पर्णकुटी में से आश्रम वातावरण के प्रतिकूल कर्कश वाणी सुनकर तृणगुच्छों की मेखला का कौपीन धारण किए एक कृशकाय महापुरुष बाहर आए। उन्होंने देखा

कि ऋषि-वेश में क्रोध की साक्षात् प्रतिमूर्ति समक्ष उपस्थित है।

बाहर आए व्यक्ति ने कहा 'स्वागत है ऋषिराज! अन्दर पधारिए और मुझ अकिंचन का अर्घ्य स्वीकार कीजिए! मेरे पास जो कुछ भी है वह सब आपकी सेवा में उपस्थित है। उसे ग्रहण करें।

मुझे खिलाएगा भिखमंगे? अपना तो तेरा पेट भरता नहीं और मुझे निमन्त्रण दे रहा है।

'भगवन् बात यह है कि प्रतिदिन तो मुझे भले न मिलता हो, परन्तु आज तो कपोतवृत्ति से संग्रहीत धान्य कुटिया में है।' अतिथेय ने विनम्र स्वर में कहा।

'अच्छा, जा, जो कुछ है लाकर दे।' अतिथि दुर्वासा ऋषि थे। उपस्थित की गई सम्पूर्ण सामग्री खाकर, संतोष की डकार लेकर वे वहां से चले गए। इधर महर्षि मुद्गल ने स्वयं भूखे रहकर कर पन्द्रह दिन तक उस कपोत-वृत्ति द्वारा अन्न संग्रह किया। कपोतवृत्ति का तात्पर्य है कि खेत कट जाने के पश्चात् धरती पर गिरा हुआ अन्न। सोलहवें दिन दुर्वासा महाराज पुनः पहुंच गए और समस्त अन्न खा गए। यह काम छः पखवाड़े तक चलता रहा। मुद्गल कपोतवृत्ति से अन्न संग्रह करते और दुर्वासा आकर सब खा जाते। अतिथि सेवा तो परम धर्म है, दूसरी ओर दुर्वासा की सेवा न करने का फल भयंकर शाप होगा। भोजन न मिलने से मुद्गल ऋषि का शरीर सूखकर कांटा हो गया। परन्तु, उस महात्मा के मुख पर कोई उदासी का चिह्न नहीं आयाः। सर्वात्मना समपर्ण भाव अनवरत बना रहा। न क्षोभ, न ईर्ष्या न क्रोध और न पश्चाताप। केवल दुःख इस बात का था कि अनेक वर्षों से वे जो दीन दुःखी वनवासियों की सेवा कर रहे थे, उन्हें लाभान्वित कर रहे थे उसमें व्यवधान हो रहा था।

इस महापुरुष की निष्काम धर्म परायणता की ख्याति अपनी जन्म भूमि कुरुक्षेत्र तक ही सीमित नहीं थी परन्तु उसका आलोक दिग्-दिगन्त तक फैल गया, देवलोक भी इससे अछूता न रहा। महर्षि दुर्वासा ने तो

उनके धैर्य और निष्काम सेवा में निष्ठा की परीक्षा हेतु ही यह सब षड्-यंत्र रचा था। अन्तिम बार जब वे इस महापुरुष की परीक्षा हेतु उपस्थित हुए तो वे स्वयं संताप पीड़ित थे। मुद्‌गल ! तुम उत्तीर्ण हुए। केवल मेरे द्वारा ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व एवं देवलोग में भी तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाए जा रहे हैं ! तुम्हें स्वर्ग में ले जाने के लिए विमान आ यहा है।

विमान के आने पर उसके अधिकारियों ने मुद्‌गल से कहा 'ब्रह्मर्षे ! आपने अपनी निष्काम सेवा और त्याग द्वारा स्वर्ग के देवताओं को भी प्रभावित कर लिया है, वे आपकी अपलक प्रतीक्षा कर रहे हैं अतः स्वर्गारोहण हेतु विराजमान होइए इसमें' देवदूत ने नम्रता से कहा।

मुद्‌गल ने पूछा 'देवदूत ! परमपुनीत धरा में और स्वर्ग में क्या अन्तर है ? वहां रहने वाले देवताओं के क्या काम हैं ? वहां के गुण और दोष भी बताइए।

देवदूत बोला 'वहां कल्पवृक्ष है, काम धेनु है रंभा और उर्वशी जैसी अप्सरायें हैं। धरती के वासी जिस सुख की कामना के लिए तपस्या करते हैं, वहां सब मिलती है। स्वर्ग में कर्म नहीं करना पड़ता। संचित शुभकर्म भोग के साथ तिरोहित होते हैं, और समस्त कर्मों के अनुपात से जब भोग बराबर हो जाते हैं, तब उसे पुनः पृथ्वी पर आना पड़ता है। वहां से मां के गर्भ की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। यही एक दोष है।'

महर्षि मुद्‌गल का मुखमंडल आश्चर्यचकित-सा देवदूत को निहार रहा था। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर विमान को नमस्कार करते हुए देवदूत से कहा 'जब वहां जाकर भी यहां वापिस आना है तो मैं अपनी शस्यश्यामला धरती को क्यों छोड़ूं। यह मेरी मातृभूमि, कितनी सुन्दर है, कितनी आकर्षक है। 'जननी जन्भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' यह मातृभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। दूसरी बात निठल्ले बैठकर खाना क्या मनुष्यत्व का अपमान नहीं। वाणी और पाणि यही तो मानव की विशेषता है।

मृतक की भांति पड़े रहना मुझे अभीष्ट नहीं। जाओ, भाई जाओ, मेरे लिए एसे स्वर्ग कीं उपादेयता नहीं और फिर मुझे पृथ्वी के इन दीन-हीनों, निराश्रितों, पीड़ितों के लिए अन्न संग्रह हेतु खेतों में भी जाना है। उनका यहां मेरे सिवाय कौन अवलम्बन है ? 'सेवा धर्मः परम गहनो योगिता-मप्य गम्यः' सेवा धर्म बड़ा कठिन होता है, योगी भी इसे नहीं पा सकते मुद्गल उसी धर्म को निभाने और अपनी मातृभूमि को सुन्दर बनाने लिए चले गये। और दुर्वासा तथा देवदूत उस निष्काम कर्मयोगी को ... रह गए।

—: समाप्त :—

नाथ चतुर्वेदी प्रोफेसर रेलवे स्टाफ कालेज बड़ोदरा। १४० प्रिंसिपल डी. ए. वी. कालेज (महिला) करनाल। १४१ मुख्य अध्यापिका दयानन्द आर्य कन्या हाईस्कूल करनाल। १४२ देवदत्त वर्मा वर्मा क्लॉथ हाऊस बजाजा बाजार करनाल। १४३ प्रिंसिपल डी. ए. वी. (महिला) कालेज प्रशिक्षण करनाल। १४४ भागीरथ कुमार, खादी मार्किट सदर बाजार करनाल। १४५ कर्णवीर आर्य आर्य मिष्ठान भण्डार दयालपुर गेट करनाल। १४६ मुख्य अध्यापक आर्य हाई स्कूल थानेसर। १४७ हवासिंह रंगा भारतीय स्टेट बैंक थानेसर। १४८ मनीराम सैनी भारतीय स्टेट बैंक थानेसर। १४९ एस. के. पुरी भारतीय स्टेट बैंक थानेसर। १५० बरकल राम आर्य ७३४८ गीता कालोनी, कुरुक्षेत्र। १५१ हरीश कुमार सिंगला ७८ प्रतापमण्डी शाहबाद मरकण्डा। १५२ मंत्री आर्यसमाज शाहबाद मरकण्डा। १५३ महाशय कुन्दनलाल प्रेमप्रकाश धूरी। १५४ मन्त्री आर्यसमाज धुरी। १५५ प्रिंसीपल आर्य हा. से. स्कूल धूरी। १५६ महाशय ज्ञानचन्द आर्य घी भण्डार धूरी। १५७ चिरंजीलाल अशोककुमार पटियाला वाली गली धुरी। १५८ डा. सन्तराम धुरी। १५९ बचनलाल गोयल ब्रादर्स, संगरूर रोड धुरी। १६० कर्म चन्द बंसल जैन निवास सुभाष नगर धुरी। १६१ राधेश्याम मोहलि इंजीनियर बसंत एग्रो सर्विस धुरी। १६२ सोमप्रकाश सिंधी स्कूटर्स धुरी। १६३ कु० रचना बहला पाठशाला रोड धुरी। १६४ रमेशकुमार ५३६ दोजियां मार्ग नाभा। १६५ निरंजनदास गुप्ता हेडमास्टर मण्डी गली संगरूर। १६६ हरीशचन्द्र महेन्द्रप्रताह टिम्बर मर्चेन्ट संगरूर, १६७ भीमसेन अशोक वस्त्र भण्डार सदर बाजार संगरूर। १६८ सुरेन्द्र गुप्ता मोहल्ला रामप्रताप सगरूर। १६९ जे० एन० सूरी शोरी हस्पताल करनाल। १७० प्रिंसीपल केन्द्रीय विद्यामन्दिर करनावा। १७१ वसंत शोरी स्टेट बैंक पटियाला करनाल। १७२ साधूराम केवल किशन बजाजा तपा। १७३ मुख्य अध्यापक सुखानंद आर्य हाईस्कूल तपा। १७४ डा. अमरनाथ ओमप्रकाश वर्मा गोपाल मेडीकल हाल मलोट। १७५ विशम्भर दयाल आर्य सहायक स्टेशन मास्टर

मलोट। १७६ भोपालसिंह सहायक स्टेशन मास्
प्रधानाचार्य के सचदेव गोपीचंद आर्य महिला का
मदनलाल आर्य विहारीलाल हंसराज गीदड़वाहा।
जयट्रंक हाउस गीदड़वाहा। १८० मुख्य अध्यापिक
गोदड़वाहा। १८१ सुरेशकुमार ग्रोवर गीदड़वाह
गोयल गीदड़वाहा। १८३ भागचंद मार्क फंड गीद
आर्यसमाज गीदड़वाहा। १८५ अशोक आर्य आर्य
१८६ प्रधान आर्यसमाज रानी का तालाव फिरोजपुरनगर।
डी० शर्मा रिटायर मैनेजर ऊडमुड़। १८८ प्रधानाध्यापक
स्कूल ऊडमुड़। १८९ जोगिन्दर वोहरा वोहरा निवास गु
१९० मुख्य अध्यापक डी. ए. वी. हाई स्कूल गुरदासपुर। १९१ प्रधाना-
चार्य ए. एस. हा. सेकंड्री स्कूल भुकेनियां। १९२ नरेन्द्रकुमार लखनपाल
हकीम भुकेनिया १९३ प्रधानाचार्य जगदीशचन्द्र ए. एस. हायर सैकन्डरी
स्कूल मुकेलियां। १९४ मंत्री आर्यसमाज दसुआ। १९५ प्रधानाचार्य
राजेन्द्रनाथ डी. ए. वी. हायर सैकन्डरी स्कूल दसुआ। १९६ प्रधाना
चार्य सुरेन्द्रकुमार जे. सी. डी० ए० वी० कालेज दसुआ। १९७ प्यारे
लाल वर्मा मेन बाजार दसुआ। १९८ मदनमोहन उपमंत्री
आर्यसमाज दसुआ। १९९ योगेशचंद्र वर्मा मेन बाजार दसुआ। २००
प्रधाना चार्य दयानंद माडल स्कूल दसुआ। २०१ मदनचंद शाह मिशन
रोड पठानकोट। २०२ लालचंद विन्नी टैक्सटाइल मेन बाजार पठान-
कोट। २०३ सुभाष मित्तल कुलदीप निवास पठानकोट। २०४ प्यारे-
लाल पैट्रोल पम्प पठाकोट। २०५ गिरधारीलाल गुप्ता पूजा मशीन
पठानकोट। २०६ प्रधानाचार्या आर्य कन्या हाई स्कूल पठाननोट।
२०७ प्रधानाचार्या रक्षा शर्मा आर्य कन्या हाई सेकंडरी स्कूल पठान-
कोठ। २०८ प्रधानाचार्य आर्य बालक हायर सैकन्डरी स्कूल पठानकोट।
२०९ शीतल गुप्ता समीप टेलीफोन एक्सचैंज पठान कोट। २१० मुख्य
अध्यापिका आर्य हाई स्कूल कादियां। २११ क्षजीतकुमार डी० ए० वी०
हायर सेन्कडरी स्कूल कादिया २१२ सोमदत्त विज, विज निवास कादिया।

—०—